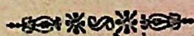

पुस्तकालय,

मुमुक्षुसर्वस्वम्

पटनामण्डलान्तर्गतराघवपुरवास्तव्येन
पण्डितवरश्रीमद्गणेशानन्द
मिश्रशर्मणा प्रणीतम्



सिद्धान्तशतकं दृष्टान्तरत्नाकरसंज्ञकः ॥
आत्मदर्पणप्रश्नोत्तराष्टकोविमलाशये ॥१॥
सप्तश्लोक्यथ विज्ञानपञ्चकं ज्ञानदंहुतम् ॥
सत्याऽनुभवविज्ञानदीपग्रन्थाःक्रमादिह ॥२॥

मुमुक्षुजनेभ्यो वितरणाय शिवहरराजधानी
वास्तव्यराजकुमारजनकनन्दनसिंहेन

का शयां

बाबू श्रीकृष्णवर्म्मद्वारा भारतजीवनयन्त्रालये
मुद्रापयित्वा निजव्ययेन प्रकाशितम् ।

सम्वत् १९६९.



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ सिद्धान्तशतकम्

भाषाभाष्यसहितम् ।

॥ श्लोकः ॥

नत्वास्वेष्टगुरूतथांघ्रियुगलम् श्रीमात्पितुः सत्सताम्
गण्यस्यामलवेदवेद्यविदुषः सिद्धान्तकर्तुः सतः ॥
तज्जोऽनन्तइतिस्वतातरचितग्रन्थस्यभाषांमुदा-
बालानांसुखबोधनायकुरुतेध्यात्वाचवागीश्वरीम् ॥१॥

॥ दोहा ॥

करौं प्रणाम शिव गौरि युत गणपति चरण उदार ॥
जेहि सुमिरे अघ भागहीं सफल होत मन कार ॥ १ ॥
पितुरचित वेदान्त की भाषा वर्णत देव ॥
करो पद्यपद जाहि सब लहों रचन के भेव ॥ २ ॥
देखि अपार विभाव जग चकित हृदय मा जाहि ॥
सोइ कहत पहिले वचन देव देव मोहि पाहि ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

पाहिपाहि जगन्नाथ देहिदेहि निजां मतिम् ॥
कोस्मिकोस्मि मृषालोकेकोसिकोसि नलक्ष्यसे ॥१॥

॥ अर्थः ॥

हे जगन्नाथ हमार रच्छा करु रच्छा करु अरु अपन मति दिहु दिहु काहे कि यह मिथ्या संसार में हम केहीर उभा भी हो इन वचित होयें एतदर्थं अपन मति दिहु जेह से अपन रूप राउर रूप बुझ परे। |

॥ श्लोकः ॥

अवश्यमसिदृश्येशकर्त्ताकर्मोद्भवोभवेत् ॥
स्वतोभवत्ववाथास्मिन्वैचित्र्यंकेननिर्मिम् ॥ २ ॥

॥ अर्थः ॥

पूर्व में हे जगन्नाथ इ सम्बोधन ते बुझपर हय कि जगत के नाथ केउ हय ते हमें कदाचित् अप्रसन कहो कि कैसे जानह कि केउ नाथ है एतदर्थं कहें है कि हे 'दृश्येश' दृश्य संसार के स्वामी अवश्य रउआ के उही काहे कि संसार कर्म है कर्म विना कर्त्ता के न होय बहुत नास्तिक जन कह हैं कि संसार स्वतः अनादि हो है पुनः नाश के प्राप्त हो है तेकर खण्डन कर हैं कि स्वतः संसार होय परन्तु यह में विचित्रता के निर्मान के केल विचित्रता विना कर्त्ता के न होय स्वतः जो हो इत तो एक रंग के होइत अनेक विधइ संसार न होइत।

॥ श्लोकः ॥

अहोजगत्पतेतेहंशक्तिंवुद्धास्मिभिङ्करः ॥
याग्रहेणनलोकेपुकरोत्येकविधंसुखम् ॥ ३ ॥

॥ अर्थः ॥

पूर्व श्लोक से इ सूचन भेल कि विचित्रता केवल परमेश्वर से

है यह से अपनाते अधिक विचार करके कह है कि 'अहोजगत्पते' हे जगत के पति शंकर शक्ति बुझ के विचार करके "हम" शंकर किङ्कर हो रहलहि यो रहआ कहीं कि कौन शक्ति बुझल तहां कह है कि ये शंकर शक्ति आग्रह करके संसार में एक रंग के सुख न करे यद्यपि जितना जीव उत्पन्न हो है सभ के भिन्न २ रंग के सुख हो है एक रंग के न होय ॥ ३ ॥

॥ श्लोकः ॥

लीलाभवतुपश्येयमितिकांक्षामयेश्वरः ॥
कालनामाततोविश्वमीदृशंपरिवर्त्तते ॥ ४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब एह श्लोक में ईश्वर के काल रूप से परिचय कहे हैं। संसार के पूर्व तो केवल ब्रह्म नाम भर रह है। तब ओही ब्रह्म ते अइसन कांच्छा उठ है कि अब संसार होय तब यही कांच्छा युक्त के ईश्वर अइसन नाम हो है से ईश्वर के काल रूप कह है कि अब कुछ लीला होय हम देखीं अइसन इच्छा युक्त ये ईश्वर हे सेइ काल नाम हे अर्थात् संसार होय की कांच्छा यह अवसर में हो हैं ओह अवस्था में ईश्वर के काल नाम होय है ततः नाम तेहि ईश्वर के दृष्टि सेइ दृश नाम अइसन अइसन देखाइत है संसार तइसन परिवर्तते नाम पुनः हो है ॥ ४ ॥

॥ श्लोकः ॥

संसाररचनायोग्यायाशक्तिः प्रकृतिस्तुसा ॥
तत्रसत्ताप्रदोयोसौक्षेत्रज्ञः पुरुषश्चसः ॥ ५ ॥

॥ अर्थः ॥

अब प्रकृति अरु पुरुष (१) को परिचय देते हैं कि संसार की रचना करने में योग्या नाम समर्था जो कोनो शक्ति है परमेश्वर की सेह प्रकृति कहाव है अरु तेहि (२) प्रकृति में सत्ता के देनिहार जो है सेह चैतन्य अरु पुरुष (१) कहावे है ॥ ५ ॥

॥ श्लोकः ॥

प्रकृतेस्तावविभेदेनपुंरुषोनेकईयते ॥
नारायणः समस्तज्ञोव्यस्तज्ञाः सर्वजन्तवः ॥६॥

॥ अर्थः ॥

पूर्व में पुरुष अरु सन कहल से पुरुष एक है अथवा अनेक है इ सन्देह के निवृत्ति कर है कि प्रकृति जो है माया ते कारे विभेद से पुरुष जो है जीव से अनेक सुझ परे है तहां अरु सन भेद है कि पृथ्व्यादि पञ्चभूत पर्यन्त सभ माया है यही सभ से रचित शरीरादि के भेदते जीव भिन्न २ सुझा है पुनः माया द्विविधा है विद्या रूपा अविद्या रूपा तेही भेदते ईश्वर जीव के कुछ भेद कह है कि नारायण जो ईश्वर से समस्तज्ञ है [नाम समस्त संसार के ज्ञाता है अरु सभ जन्तु जे है से व्यस्तज्ञ है नाम अपन थोरा व्यवहार भर जाने है ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

एवंकार्य्यविभेदेनकारणस्याप्यनेकता ॥
नाममात्रन्तुतत्कार्य्यंसत्यांचिद्ब्रह्मकारणम् ॥ ७ ॥

॥ अर्थः ॥

पुनः यही रीति से ब्रह्म के भी अनेकता अरु सत्यता देखा-

से है कि एवं नाम अइसन हौ जैसे माया के भेदते जीव भिन्न बुझपर है अइसहीं कार्य के भेदतै कारण के भी अनेकता है कार्य संसार है कारण ब्रह्म है यह ते कह है कि कार्य जो है से नाम मात्र है नाम असत्य है नाशि भए है अनुचित् नाम चैतन्य ब्रह्म जो है कारण से सत्य है ॥ ७ ॥

॥ श्लोकः ॥

तद्ब्रह्मसाक्षिभूतंचित्सईशस्सर्वशक्तिभृत् ॥
सजीवोयोभिमानेनसुखीदुःखीप्रतिक्षणम् ॥ ८ ॥

॥ अर्थः ॥

पूर्व के प्रसंग से ब्रह्म ईश्वर जीव तीन भेद बूझ परत तेकर परिचय कहे हैं, कि "तद्ब्रह्म" नाम से इ ब्रह्म है कौन तहां कहे हैं साक्षी भूत चित् कहीं चैतन्य जो है सेइ अरु स ईशः नाम सेई ईश्वर है जे सर्वशक्तिभृत् नाम संसार के उत्पत्यादि करे के समस्त शक्ति के धारण कर्त्ता जो है अरु सजीवः नाम सेई जीव है कौन कि जे अभिमान करके नाम सब कार्य के कर्त्ता हम ही हमर इ सब वस्तु है सुख दुःख हमरे हो है अइसन अभिमान (१) ते प्रतिक्षण सुखी दुःखी जो है ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

विनामनस्तुयोवेत्तिविषयान्सकलेन्द्रियैः ॥
सोन्तर्य्याम्यत्रविज्ञेयः सजीवोमनसात्तुयः ॥ ९ ॥

॥ अर्थः ॥

पूर्व ब्रह्म ईश्वर जीव तीन भेद कहल तेह में ब्रह्म जो है से

तो निराकार चिद्रूप से सर्वत्र पूर्ण है ईश्वर जी है से भो एक रूप से सभ प्राणी के हृदय मे अखण्ड वास कैले है ओही ईश्वर के प्रति विम्ब बुद्धि में जे है सेई जीव है ओही ईश्वर जीव के रूप भिन्न २ निज शरीर में युक्ति से अनुभव करावे हैं कि विना मन के जे सकल इन्द्रिय करके तत्तत् इन्द्रियन के जे विषय है ते कराके बुझ है सेई अथ कहीं यह शरीर में अन्तर्यामी विशेय है नाम जानि योग्य है अरु सजीवः सेइ जीव है कि जे मन से नाम मन द्वारा इन्द्रि सभ से विषय के बुझ है यह में भाव अइ-सन है कि जैसे केउ कुछ कहल कते कराके मन दे के जे सुन है से तो जीव है अरु जब मन कहंई दूसरा वस्तु पर है तेह अवसर में केउ कुछ बोलल ओकरा के जे श्रवण करके ज्ञाता जी है से अन्तर्य्यामी ईश्वर है ॥ ९ ॥

॥ श्लोकः ॥

सत्यस्तुपरमात्मात्रयोन्तर्य्यामीनिगद्यते ॥
जीवोमायामृषादेहेऽहंकारीव्यवहारवान् ॥ १० ॥

॥ अर्थः ॥

अब जीव ईश्वर के वस्तुतः अभेद देखावे हैं कि अत्र नाम यह शरीर में सत्य तो परमात्मा जे है सेई है जे अन्तर्य्यामी अइसन कहावे हैं अरु जीव जे है से माया नाम मिथ्या है मृषा देह विषे अहङ्कारी अनेक व्यवहार से संयुक्त अइसन जे जीव है से मिथ्या है यह में अइसन भाव है कि वस्तु तो जीव ईश्वर एके है जीव अइसन संज्ञा अरु जीवत्व मिथ्या है ॥ १० ॥

॥ श्लोकः ॥

चक्रवातायथावाताद्धूलीपत्रादिभिः सह ॥
उद्गताजीवजातानिसूक्ष्मस्थूलैस्तथेश्वरात् ॥ ११ ॥

॥ अर्थः ॥

अब दृष्टान्त सहित उपाधि भेद से जीव के ईश्वर से पृथकता पुनः उपाधि निवृत्ति से जीव के ईश्वर रूपता दु श्लोक से कहे हैं कि जैसे शुद्ध जो वायु है तिस से धुरी पत्रादि के साथ चक्रवात नाम बौंडरा उद्गत हो है नाम उत्पन्न हो है तैसे ही जितना जीव जात है वे सूक्ष्म बुद्धि महत्वादि स्थूल पञ्च भूतादि यह सभ सहित ईश्वर से उद्गत होय हैं उत्पन्न होय हैं ॥ ११ ॥

॥ श्लोकः ॥

चक्रवातेशमंयातेनिर्विकारोयथानिलः ॥
चित्तवृत्तौप्रशान्तायांतथाजीवःस्वरूपभाक् ॥ १२ ॥

॥ अर्थः ॥

अब द्वितीय श्लोक में एकता कहे हैं कि जैसे चक्रवात जो है भ्रमन करत वायु से जब शान्त हो है तब निर्विकार अनिल हो है नाम शुद्ध पूर्ववत् ओही वायु हो जा है तैसे चित्त वृत्ति जो है अनेक से जब प्रशान्त हो हैं तब वो कराशान्त भेला सन्ता जीव स्वरूप भाक् होय है नाम स्वरूप जो है ईश्वर तद्रूप होजा है ॥ १२

॥ श्लोकः ॥

सूक्ष्मस्यस्थूलयोगेनवियोगेनजनिर्मृतिः ॥
मुक्तिश्चिदात्मबोधेनतयोर्निरभिमानतः ॥ १३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब जन्म मरण जो कहावें हैं तेकर भेद देखाव है कि सूक्ष्म जो शरीर है से शरीर के जब स्थूल शरीर से योग होय है नाम सूक्ष्म शरीर जब स्थूल में आके प्राप्त हो है तब वो ही जनि नाम जन्म कहाव है अरु जब सूक्ष्म के स्थूल से वियोग हो है ओही मृति नाम मरण कहावे है सुधि जो है से तो तयोः याही से जो है स्थूल सूक्ष्म दुनों शरीर ओह दुनों से जब निरभिमान होकर के चित् चैतन्य जो आत्मा हैं,तेकर जब बोध हो है तब हो है ॥१३॥

॥ श्लोकः ॥

मायाकर्पाशसूत्राणांगुणांनांघसनंजगत् ॥
चित्रितंविविधैरूपैर्भातिबोधात्मनीश्वरे ॥ १४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब संसार के वस्त्र रूप से वर्णन करे हैं कि माया जो है से है कर्पास नाम कपास है ओही माया ते है उत्पन्न जो है गुण सभ से है सूत है ओही गुण सूत्र के जगत जो है संसार सेई वसन नाम वस्त्र है वो कैसन है विविध जो रूप है से चित्रकारी है तेह से चित्र नाम चित्रकारी कैल है सेह वस्त्र बोधात्मानाम बोध स्वरूप जो है आत्मा ईश्वर तेकरा पर भास है नाम शोभे है ॥ १४ ॥

॥ श्लोकः ॥

चित्तामात्योमनोदूतोहर्षाद्यैः किङ्करैर्धिया ॥
पत्न्याशब्दादिदेशानांराजाबोधोविराजते ॥ १५ ॥

॥ अर्थः ॥

अथबोध रूप जो है आत्मा ते को करा राजा रूप से वर्णन करे हैं कि चित्त मन्त्री मन नाम कर के दूत इन्द्रि सभ किंकर औ नाम बुद्धि सेइ पत्नी यह सभ से मुख्य शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इहै जो पांच विषै है "सेइ पांच देश है एही पांचों देश के राजा बोधजो है से विराजे हैं" ॥ १५ ॥

॥ श्लोकः ॥

एकएवजगच्छाखीबोधदारुमयोमहान् ॥
विषयैः फलपुष्पाद्यैरनित्यैः शोभितोद्भुतः ॥ १६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब यह संसार को वृक्ष रूप वर्णन कर इत युक्ति से अर्थात् मिथ्या कहे हैं कि एक एव नाम एकै गो महान बड़ा गो जगच्छाखी नाम संसार वृक्ष अद्भुत शोभित है कइसन वृक्ष है कि बोध जो है सेइ तो दारु यहीं काठ है तेह से पूर्ण है अरु अनित्य जो है विषय सभ सेइ फल पुष्पादिक है तेह से अद्भुत शोभित है यह में अइ सन भाव है कि वृक्ष अइसन जो कौनो नाम है सेइ तो जगत है अरु समस्त वृक्ष में पूर्ण जो काष्ठ हैं से बोध है अरु विषय सभ जो है से फल पुष्पादिक है तो फलादिक जो है से तो सदा न रहै है एहते फलादिक स्थान मे जो विषय सभ है से मिथ्या है अरु वृक्ष अइसन जो कौनो नाम है से भी मिथ्या है काहे कि वृक्ष तो कुछ वस्तु न है सभ काष्ठे है एहते काष्ठ में जेसे वृक्ष नाम मिथ्या है तेसे पूर्ण बोध जो काष्ट है तेह में जगत नाम मिथ्या है ।

॥ श्लोकः ॥

एकमेवजगत्सर्वंशुद्धबोधात्मकंमृषा ॥
नामरूपादिभिर्भेदैर्दृश्यतेशाखिदारुवत् ॥ १७ ॥

॥ अर्थः ॥

पूर्व में जे भाव कहलो सेही दृष्टान्त सहित कहे हैं कि शुद्ध बोधात्मक नाम शुद्ध बोध स्वरूप ई सम्पूर्ण जगत् एके है अनेक न है परन्तु मृषा नाम मिथ्या जे हैं नाम रूपादि भेद तेही कर के भिन्न २ अनेक देख परे है दृष्टान्त कहै है कि "शाःखिदारुवत्" नाम शाखी जे है वृक्ष तेकर दारु जे काष्ठ ते करा सदृश एह में ऐसन भाव है कि जेसन वृक्ष के जे काठ है से स्कन्धशाखा इत्यादि नाम रूप के भेद से अनेक देख परे है ते सही संसार ॥ १७ ॥

॥ श्लोकः ॥

ज्ञानकाष्ठस्यसंसारतरोर्नानाविधाजनाः ॥
शाखाइवोद्गताभान्तिविषयैः पल्लवादिभिः ॥१८॥

॥ अर्थः ॥

अब जन सभ के शाखा रूप से वर्णन करे हैं कि जैसे शाखा पल्लवादि सहित उत्पन्न हो के तैसे विषय रूप पल्लवादि सहित नाना विध जन जे है से जाने है काष्ठ जेह में ऐसन जे है संसार तरु ते कर शाखा के सादृश उद्गत नाम उत्पन्न सोभ इत है ॥१८॥

॥ श्लोकः ॥

ज्ञानस्वरूपीसर्वत्रपरमात्माविराजते ॥
स्वशक्त्यानिर्मितेस्वस्मिन्स्थूलसूक्ष्मसमुच्चये ॥१९॥

॥ अर्थः ॥

अब पर मेश्वर के ज्ञान रूप से सर्वत्र वर्णन करें हैं कि यावत जो हैं स्थूल सूक्ष्म के समुच्चय नाम समस्त संसार से कइसन है कि स्वशक्त्या नाम अपन शक्ति कर के स्वस्मिन् नाम अपने स्वरूप के विषय निर्मित है नाम रचना कैल है तेह में सर्वत्र ज्ञान रूपो जो परमात्मा छे से विराज इत है ॥ १९ ॥

॥ श्लोकः ॥

ज्ञानमेवपरंब्रह्मपरिपूर्णस्थिरंसुखम् ॥
अनित्यतास्तिवृत्तीनांज्ञानंत्वेकरसंसदा ॥ २० ॥

॥ अर्थः ॥

अब ज्ञान के ब्रह्म नाम कर के परिपूर्णता कहै हैं कि ज्ञान जो है सेही पर ब्रह्म है से कैसन है कि सर्वत्र परिपूर्ण अरु स्थिर सुख आनन्द रूप है कदाचित् संदेह होय काहे कि जब वस्त्र को ज्ञान है तब घट के ज्ञान नहीं है एवं प्रकार से दिन राती में अनेक ज्ञान होए है कइ से ज्ञान के स्थिर ब्रह्म कहू है तहां कहै हैं कि ज्ञान अनित्य न है किन्तु वृत्ति सभ के अनित्यता है ज्ञान तो सदा एकरस रहै है अरु अनेक के नाश होहे एह में ऐसन भाव है कि जब वस्त्र नेत्र के सम्मुख आएल तो वस्त्राकार होय जब वस्त्र भिन्न हो गेल अन्य वस्तु आयल तब ओइसने वृत्ति भैल पूर्व वृत्ति नष्ट हो गेल एवं प्रकार से सभ में वृत्ति उठे है अरु नाश है ज्ञान तो बोध रूप है से बोध तो सदा स्थिर रहै है ॥ २० ॥

॥ श्लोकः ॥

ज्ञानात्मनिस्थिरेपूर्णेशरीराणिभ्रमन्तिहि ॥
व्योम्नीवनशरीरेणचलत्यात्मेतिसाध्यताम् ॥ २१ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ज्ञानात्मा की स्थिर भावना करि कहत हैं कि ज्ञान रूपी आत्मा जो है से स्थिर पूर्ण हैं ओही में शरीर सभ भ्रमण करत है। शरीर के साथ आत्मा न चलत । इति साध्यताम् नाम सदा अइसनी साधन कर। दृष्टान्त कहत हैं कि व्योम्नीव: जइसे व्योम आकाश तो न चले किन्तु आकाशो मे शरीर सब चलत हैं तइसही आत्मा मैं सदा भावना करे ॥ २१ ॥

॥ श्लोकः ॥

तादृक्किंकार्य्यमस्त्यात्मासाक्षीयत्रनविद्यते ॥
कार्य्येप्रतिक्षणंनष्टेज्ञाताशुद्धस्तुसर्वदा ॥ २२ ॥

॥ अर्थः ॥

अब आत्मा के साक्षित्व वर्णन करत हैं कि ऐसन कौन कार्य है कि जो हमी आत्मा साक्षी न है अरु कार्य जो है से प्रति क्षण में नष्ट हो है पीछ कार्य के ज्ञाता जो है से तो सवर्दा सब काल में रहे हैं ॥ २२ ॥

॥ श्लोकः ॥

चैतन्यार्कप्रकाशोयमाकाशोयोवगम्यते ॥
तत्रैवमृगतृष्णाभंसर्वमन्यत्प्रदृश्यते ॥ २३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब संसार के मृगतृष्णावत वर्णन कर हैं कि चैतन्य जो है सोइ तो अर्क नाम सूर्य्य है से सूर्य्य को प्रकाश जेइ आकाश है तथैव कहीं तेहि आकाश प्रकाश में मृग तृष्णा की सदृश अन्य जेतना जो संसार है से देख पर है ॥ २३ ॥

॥ श्लोकः ॥

नास्तिवुद्धिरहंकारोमनश्चित्तेन्द्रियाणिच ॥
दृश्याध्यासेनसद्बोधादुद्गताःप्रतिविम्बवत् ॥ २४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब वुध्यादि के उपाधि सङ्ग ते उत्पत्ति दृष्टान्त सहित कह है कि वुधि अहंकार मन चित इन्द्रियं इं सब एको न है परन्तु दृश्यध्यासेन नाम दृश्य जो है विषय तेकर अध्यासे नाम सङ्गसे सद्बोध स्वरूपते वुध्यादि उद्गात हो हैं नाम उत्पन्न हो हैं दृष्टान्त कह हैं कि प्रतिविम्ब की सदृश जइसे पहिले प्रति विम्ब न रहैं जब दर्पण अथवा जलादि के संयोग हो है तब अपने रूप से दर्पणादि में प्रति विम्ब उत्पन्न हो है तइसहीं विम्ब जो बोध रूप से दैत के वास-ना से भास है ॥ २४ ॥

॥ श्लोकः ॥

एकएवसुखीदुःखीज्ञोऽज्ञश्चेत्कुत्रसत्यता ॥
याजड़ान्यवशाशक्तिः कुतस्तत्रापिसत्यता ॥२५॥

॥ अर्थः ॥

अब एक श्लोक में जीव अरु शक्ति जो है माया इं दूनो में अस-

त्यता देखा के पुनः एक श्लोक में केवल ब्रह्म के सत्यता कहे है कि एके जे है जीव से जब कबहीं सुखी कबहीं दुःखी कबहीं ज्ञानी कबहीं अज्ञानी जब है तब कहा सत्यता है अरु जे शक्ति माया जड़ है अर्थात दोनों अरु अन्य बस है तब ओहमे भी कहां सत्यता है माया जड़ मिथ्या है ॥ २५ ॥

॥ श्लोकः ॥

अतस्सर्वमिदंमायासत्यंचिद्ब्रह्मकेवलम् ॥
साक्षिभूतमधिष्ठानंसर्वकारककारणम् ॥ २६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ब्रह्म के सत्य वर्णन करे हैं कि जब जीव अरु शक्ति सत्य न है अतः कहो ई सब जे है से माया है नाम मिथ्या है सत्य तो केवल चैतन्य ब्रह्म जे है सेइ हैं से ब्रह्म काइअन हैं की साक्षी हैं अरु सब के अधिष्ठान नाम आधार हैं अरु सर्व कारक नाम जीतना जे है वस्तु तेह सबके कारण हैं ॥ २६ ॥

॥ श्लोकः ॥

मायाक्षुधाभोजनमन्नजातंमायाशरीरंशोणितथासुतासिः ॥
अध्यासमूलानिविभांतिनूनंचित्तेनग्लग्नेनाहिभानमेषाम् ॥

॥ अर्थः ॥

अब क्षुधादिक जे सत्यवत् है ते बाराके भी युक्ति से मिथ्या कहे है कि क्षुधा अरु भोजन अरु जेतना अन्न जाति है से अरु शरीर अरु प्राण के तृप्ति ई सभ माया नाम मिथ्या हय काहे कि क्षुधादिक जे है से अध्यास मूल है नाम यह सभ मे जब चित्त

के संग हो है तव ही इं सभ वुझ पर है' काहि कि जब चित्त अन्य वस्तु में लगल रह है तब वह काल में द चुधादिक के भान नाम प्रतीत नहोय है ॥ १७ ॥

॥ श्लोकः ॥

क्वचित्तुदुख:रूपेणसुखरूपेणवा:क्वचित् ॥
विभातिमोहिकामिथ्यासामायाकथितावुधैः ॥२८॥

॥ अर्थः ॥

अब लक्षण द्वारा माया के निश्चय कर हैं कि कब हि तो दुख रूप से कबहि सुख रूप से जे वुझ परे अरु मोहिका नाम मोह दे वे अरु मिथ्या होय अइसन लक्षण युक्त जे जे वस्तु है ते-करे के वुध पंडीत लोग माया निश्चय कर है ॥ २८ ॥

॥ श्लोकः ॥

राधासीतारमादुर्गायाएताजगदम्बिका ॥
नासुमायाभिधानांहिचिद्रूपाब्रह्मसंज्ञिकाः ॥२९॥

॥ अर्थः ॥

अब राधा सीता इत्यादि विषे माया शब्द जे कह है ते कर निषेध कर हैं कि माया तो मिथ्या कहाव है यह ते राधा अरु सीता अरु लच्मि अरु दुर्गा ई जे जगदम्बिका हैं नाम जगत के माता हैं इनका विषे माया भिधान नाम माया कथन न है किन्तु चिद्रुप हैं ब्रह्म अइसन संज्ञा है राधादिक के ॥ २९ ॥

॥ श्लोकः ॥

अज्ञानादवुधाः केचिद्वदन्त्युनाविचक्षणाः ॥
वदिष्यन्तिनपुंस्त्रीषुतत्वभेदंकदापिवै ॥ ३० ॥

॥ अर्थः ॥

अब स्त्री अरु पुरुष यह दूनो में भेद अज्ञानता कर से है से
कह हैं कि अज्ञानता से अबुध नाम अविवेकी जे केउ हैं से
नाम पुरुष में अरु स्त्री में तत्व भेद कह हय परन्तु जे विचक्ष
हैं नाम पण्डित हैं विवेकी हैं से कदापि नाम कबहो पुरुष स्त्री
में तत्व भेद न कहतन ॥ ३० ॥

॥ श्लोकः ॥

ज्वलिताग्निरिवात्माहंमत्प्रभेन्द्रियजातयः ॥
विषयेन्धनजोधूमोदेहादिसकलंजगत् ॥ ३१ ॥

॥ अर्थः ॥

अब आत्मा को अग्नि रूप से वर्णन करत है कि ज्वलित नाम
बरत अग्नि के सदृश आत्मा हम हो अरु इन्द्रिय सब जे हैं से
हमर प्रभा है अब विषय जे है से इन्धन है नाम काठ है तेकरा
संयोग ते उत्पन्न जे है धूम सेई देहादि समस्त जगत है ॥ ३१ ॥

॥ श्लोक ॥

ममेयमिदृशीशक्तिः शान्तस्यसुखरूपिणः ॥
विभातिवहुधाक्लेशकर्म्मरूपगिरादिभि ः ॥ ३२ ॥

॥ अर्थः ॥

अब रूप वदन इत्यादि सब के अपन शक्ति रूप से वर्णन कर

हैं कि शान्त सुख रूपी हमहीं हमरे अइसन इ शक्ति है सेई लोग अरु कर्म अरु रूप गिरा नाम वचन इत्यादि बहुत रूप से विभाति नाम भास है ॥ ३२ ॥

॥ श्लोक ॥

विज्ञानामिमृषासर्वंविचित्रंममायया ॥
मय्येवरचितंज्ञानस्वरुपेस्वप्नविश्ववत् ॥ ३३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ज्ञान जे है निज रूप तेही में संसार के रहना दृष्टान्त सहित कह है कि ई जेतना जे मिथ्या नाम झूठ विचित्र नाम अनेक रङ्ग वस्तु हैं से सब हमरी माया करके ज्ञान स्वरूपी जे ह महो मोही हमारे रूप में रचित हैं दृष्टान्त कह हय कि स्वप्न विश्ववत् नाम स्वप्नावस्था के संसार के सदृश जइसे स्वप्ना में जे विश्व संसार देख पर है से अपने रूप में रचित है काहे को ई जे संसार है से तो जाग्रते अवस्था मे देख पर है तइ सही ई संसार है ॥ ३३ ॥

॥ श्लोकः ॥

येनबोधेनजानामिहूपीकैवांजगद्यथा ॥
तथैवनिजदेहंचकथंनानोतिमेभ्रमः ॥ ३४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब युक्ति से भेद भ्रम के निवृत्ति कर है कि जेह बोध करके अव जेह इन्द्रि करके जइसे जगत के जानहो तइसहीं निज देह

के भि जानही तब नाना नाम अनेक भेद भ्रम हमरा कहे. हो है ॥ ३४ ॥

॥ श्लोकः ॥

नाहंस्थूलशरीरोऽस्मियस्मात्स्वप्नेदृश्यते ॥
तच्चेदानींनपश्यामिसत्यंज्ञानमहंध्रुवम् ॥ ३५ ॥

॥ अर्थः ॥

अब स्थूल सूक्ष्म इ जे शरीर भेद है तेह ते भिन्न नित्य नि रूप कह हय कि हम स्थूल शरीर नहीं नाम स्थूल शरीर हमा रूप नहैं काहे भि यतें वं स्वप्नावस्था मे न देख परे तब कद चित कहि को स्वप्नावस्था के जे शरीर है सेइ हमर रूप हैं सो न हब सको काहे कि सुद्दो शरीर इदानीं नाम जाग्रत काल मे न देखो तस्मात ध्रुव नाम अचल सत्य ज्ञान रूप हम छी यतें ज्ञान जे हम सेइ सभ काल मे एक रस रहइ ॥ ३५ ॥

॥ श्लोकः ॥

नसुखेनममार्द्धिः स्यान्नचदुःखेनवाक्षतिः ॥
ज्ञानरूपस्यनित्यस्यसुद्धयोद्वेजनंवृथा ॥ ३६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ज्ञान रूप निज रूप में सुख दुःखादिक न है से कह कि सुख करके हमर ऋद्धि नाम वृद्धि न है अरु दुःख करे क्षति नाम भी न है काहे की हम स्वयं ज्ञान रूप छी अब नि हो पदसन स्वरूप जे हमछी ते करा सुत नाम हर्ष अरु भय क उद्वेजन नाम उद्वे जन इ सब वृथा नाम व्यर्थ मिथ्या हैं ॥ ३६ ॥

॥ श्लोकः ॥

प्रतिकूलानुकूलौद्वौभावावध्यासजौमृषा ॥
स्वभाववशगौक्वापिविपरीतौस्वयंकिल ॥ ३७ ॥

॥ अर्थः ॥

अब अयोग्य अरु योग्य ई दू भेद संसार मैं हैं जेकरा मिथ्या कहे हैं कि प्रतिकूल नाम अयोग्य अनुकूल नाम योग्य ई जे द भाव है से अध्यास नाम सङ्ग करके उत्पन्न है अरु मृषा है अरु ई दूनो भावमे वश है अतो वे स्वय नाम अपने किल नाम निश्चय क्वापि नाम कहुँ ई विपरीत देख पर हैं अइसन भाव है को एकी वस्तु स्वभाव भेद ते केकरो अयोग्य बुझा है केकरो योग्य बुझा हैं अत दूनो भाव मिथ्या है ॥ ३८ ॥

॥ श्लोक ॥

शब्दंश्रुत्वाग्रातौकर्णौबुद्धार्थंविगतामतिः ॥
शब्दस्तुतत्क्षणेननष्टः साक्षीशुद्धस्सदास्थितः॥ ३८॥

॥ अर्थः ॥

अब शुद्ध साक्षी आत्मा के सदा स्थिरता अरु इन्द्रिय बुध्यादि के प्रति क्षण अनित्यता कहे है कि शब्द के सुन के कर्ण इन्द्रिय जे है से भिन्न हो गेल अरु आपो शब्द के जे अर्थ है ते करा बुझ के बुद्धि भो चल गेल अरु शब्द तो ओहो क्षण मे नष्ट हो गेल परन्तु साक्षो जे है शुद्ध से सदा स्थित रह है ॥ ३८ ॥

॥ श्लोकः ॥

एवंनानाविध : कालेशक्तयः साक्षिणः पुरः ॥
प्रदुर्भवन्तिशाम्यन्तितासांनामम्षाजगत् ॥ ३९ ॥

॥ अर्थः ॥

अब साक्षी के नित्यता अरु जगत के अनित्यता कहु हैं कि एवं नाम यही प्रकार ते साक्षी जे है तेकरा पुनः नाम अगाड़ी काल पाय के नाना विध शक्ति प्रदुर्भाव हो है नाना उत्पन्न हो हैं पुनः शान्त हो हैं ओही शक्ति सब के जगत अइसन मिथ्या नाम है ॥ ३९ ॥

॥ श्लोकः ॥

घृतान्नशर्करंवीजंयथामिष्टान्नजातिषु ॥
नानाविधेषुजीवेषु तथावीजंगुणत्रयम् ॥ ४० ॥

॥ अर्थः ॥

अब नाना विध जीव के होयवे कारण दृष्टान्त सहित कहैं हैं कि जइसे अनेक मिठान्न जाती में घृत अरु अन्न अरु शक्कर शब्द सब अब मोठा यही तीन वोज नाम कारण है तइसे नानाविधि जीव मे तीन गुण जे हैं से वीज कारण हैं ॥ ४० ॥

॥ श्लोकः ॥

घृतान्नशक्कर्वीजंयथामिष्टान्नजातिषु ॥
नानाविधीन्द्रियोंपतथेदभूतपञ्चकम् ॥ ४१ ॥

॥ अर्थः ॥

अबपूर्व दृष्टान्त से विषय जे भी कारण कहु हैं कि जइसे मिष्टा

म जाति मे घृत अन मिठा कारण हैं तइसहीं नाना विधेन्द्रियार्थ नाम विषय है तेहमे भूत पञ्च कनाम पञ्च भूत पृथिव्यादि जो है से कारण है अर्थात जइसे कुछ २ भेद ते मिष्टान्न अनेक रंग को है तइसे पञ्च भूती के किञ्चित २ भेद ते विषय भो अनेक रंग के हो हें ॥ ४१ ॥

॥ श्लोकः ॥

जगत्प्रवाहरूपेणसत्यमस्तीतियद्वचः ॥
निर्दयानांविमूढानांयूनांतदवगम्यते ॥ ४२ ॥

॥ अर्थः ॥

अब संसार के सत्य जे कह हैं तेकरा निर्दय मूर्ख वर्णन कर हैं कि जइसे पूर्व जल सदा भिन्न होइत रह है नवीन जल अवइत रह है परन्तु प्रवाह जो है धारा से सदा पूर्ण बुझा है अइसहीं प्रवाह रूप से जगत सत्य हे जे वचन है से जे निर्दय अरु वि-मूढ़ नाम मूर्ख अरु युवा जे हैं नाम हृष्ट विवेको नहीं तेह लोग के बूझ पर है ॥ ४२ ॥

॥ श्लोकः ॥

यद्वस्तुशरीरेऽतदेवान्यस्यदृश्यते ॥
विशेषणेनकेनत्वंक्षुभ्यन्मुह्यासिभेददृक्क ॥ ४३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब युक्ति से भेद दृष्टि के प्रथम कर हैं कि जेजे वस्तु तोहरा अपना शरीर मे है ओहो दोसरा के भो शरीर मे देख पर है तब कौन विशेष करके क्षुभन नाम चञ्चल होइतभेद दृष्टि होके मुह्यसि नाम मोह के प्रप्त होइ स्त्रियादि के विषे ॥ ४३ ॥

॥ श्लोकः ॥

घर्णस्व भावमात्रंञ्जुतद्वैतत्वमिहदृश्यते ॥
गुणात्मकामृषातीपस्वयंपरिणामन्तिहि ॥ ४४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब युक्ति से अद्वैत निरूपण कर हैं कि एह संसार मे वर्ण जे है स्वेत पीतादिक अरु स्वभाव एहो दूनोद्वैत के भावदेखपर से वर्ण अब पक स्वभाव काइसन है कि गुणात्मक नाम गुण से उत्प गुण रूप है अरु मृषा नाम मिथ्या है काहेकी स्वयं नाम आप परिणाम आहीं रूपान्तर हो जा है अर्थात कउनो वस्तु है कउनो पीत है कउनो के काईसनो स्वभाव है एहो २ एह एहो दूनो द्वैत के भाव देखपर है ॥ ४४ ॥

॥ श्लोकः ॥

गतान्यनेकजन्मानिगमिष्यन्ति तथा तव ॥
विकल्पजाल मग्नस्य स्वात्मबोधं विनानशम् ॥ ४५ ॥

॥ अर्थः ॥

अब आत्मबोध विना सुख न होए से कह हैं कि विकल्पजाल नाम भेद जालमे मग्न नाम डुबल जी तूं ह तेह तोहर अनेकजन्म गत हागैल अरु अनेक जन्म गत होयत परन्तु स्वात्मबोध विना नाम निजरूप के परिचय विना शं नाम सुख न है ॥ ४५ ॥

॥ श्लोकः ॥

आविर्भावतिरोभावौ जानासिवपुषोयादि ॥
विशेषस्तर्हिकिंःस्वप्नाद्यद्विमूढोनचेतसि ॥ ४६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब युक्ति से चेत करै कहत हैं कि यदि नामजो वपुषशरीर के आविर्भाव नाम उत्पत्ति तिरोभाव नाम नाश जानहु तब स्वप्ना से एकरो कौन विशेष ? कि हे विमूढ़ हे मूर्ख न चेत कर अर्थात स्वप्ना हो है पुनः चणान्तर मे नष्ट हो है एहते स्वप्ना के मिथ्या कहहु अदर्शन लक्षण तो शरीर कै भो है तब काहेन चेत ॥ ४६ ॥

॥ श्लोकः ॥

दृश्यतेयन्नतत्सत्यं तत्सत्यंयन्नदृश्यते ॥
त्वमेवतत्परं तत्वं परोक्षं मनुषे कथम् ॥ ४७ ॥

॥ अर्थः ॥

अब सत्य असत्य के लक्षण द्वारा निज रूपके परिचय कहत हैं कि जो देख परत है से सत्य न है अरु जो न देख परै से सत्य है अदृश्य कौन वस्तु है कि 'परतत्व सेह कहत हैं कि सेजो पर तत्व है से तो तुहींह तब परोक्ष काहेसं मानहु अर्थात अपनरूपकै परोक्ष काहेसे मानहु ॥ ४७ ॥

॥ श्लोकः ॥

वासुदेवस्य पूर्णत्वं चिन्मयत्वं च विश्रुतम् ॥
भवस्यसाक्षान्मिथ्यात्वं बुध्वापिनवितृप्यासि ॥ ४८ ॥

॥ अर्थः ॥

अब संसार के मिथ्यात्व कहके दृढ़ कर हैं कि वासुदेव
हैं आत्मा तेकर सर्वत्र पूर्णता अरुचिन्मयत्व नाम चेतन्य रूपत
विश्रुतनाम विख्यात है अरु भवजी है संसार तेकर साक्षात मि
थ्यात्व विख्यात है तब अदृसनबूझ के भी इसि न होय ॥ ४८ ।

॥ श्लोकः ॥

न रूपस्पर्शतोभिन्नं शरीरंदृश्यते क्वचित् ॥
नवाद्रष्टरिवैचित्र्यं कुत्रास्तुत्वमहंवचः ॥ ४९ ॥

॥ अर्थः ॥

अवत्वं अहं इजेद्रवचन है तेकर खण्डन कर हैं कि रू
अरुस्पर्श एहते शरीर क्वचितनाम कहूंभिन्न न देखपरे अर्था
जैतनाशरीर है से रूप स्पर्श है एहते सब एके है अरु द्रष्टामें
वैचित्र्यनाम विचित्रता न है तब त्वं अरु अहं इजेवचन है
कुत्रास्तु नाम कहा रहो अर्थात जब दूवस्तु होय तब एक में त
अरु एक में अहंरहे से त्वं अहंशरीर जो शरीर में कहो तो शरी
भी सबके एके है द्रष्टा आत्मा में कहो तो उभो एके हैं अतः
दूवचन अयोग्य है ॥ ४९ ॥

॥ श्लोक ॥

कतिधाशक्तयस्सन्ति तवेच्छावशगामृषा ॥
साबुद्धिविवशासाते ऽस्त्येवमीशवशेजगत् ॥ ५० ॥

॥ अर्थः ॥

अब दृष्टान्तद्वारा संसार को ईश्वरवश कहे है कि मृषानाम

झूठा। कतिधा नाम कतिना प्रकार के शक्ति तोहरा इच्छावश मे है से इच्छा बुद्धि विवश है से बुद्धि भी तोहरा विवश है एवं नामयह्नो प्रकार तें ईशजी हैं ईश्वर तें करावश में समस्तजगत है ॥ ५० ॥

॥ श्लोकः ॥

कुत्रयासिमनस्तिष्ठन किञ्चिद्वर्त्ततेवहिः ॥
ज्ञाननाम्नारिणागत्य संवतेनाशितंजगत् ॥ ५१ ॥

॥ अर्थः ॥

अब युक्ति द्वारा मनके स्थिरकर हैं कि हे मन कहां जाय- तिष्ठनाम स्थिर हो बाहर कुछो न है कदाचित कह कि समस्त जगत हमार बाहर है तहां कह हैं कि ज्ञान नामा जो तोहर शत्रु हैं से आकर के सब तोहर जगत के नाश कर देलक अतः स्थिर होय ॥ ५१ ॥

॥ श्लोकः ॥

मिथ्यैवचेदिदंसर्वं मनस्तत्स्मरणेनकिम् ॥
वैकुंठनिलयंहित्वा दुर्गतौकिंनिमज्जसि ॥ ५२ ॥

॥अ र्थः ॥

पुनः मनके उपदेश कर हैं कि हे मनई सब जब मिथ्ये हैं तब एकरा स्मरण कयला से का कुच्छफल न है वैकुंठ निलय नाम वैकुंठ स्थान छोड़यको दुर्गतो नाम दुःख स्थाननरक समान मे काहे डूबह ॥ ५२ ॥

॥ श्लोकः ॥

जहीहिधावनं वाह्ये मनस्सर्वाः समृद्धयः ॥
ज्ञानाभिधेनसिद्धेन दर्शिताभवने तव ॥ ५३ ॥

॥ अर्थः ॥

अव लोभ देखाके मन के स्थिर करहैं कि हे मन वाहर के धावन नाम दउरव जहीहि नाम त्यागकर काहेकि जतना समृद्धिनाम सिद्धि सम्पत्ति है से सव ज्ञान नामा सिद्ध तोहरा भवन नामा मे देखा देलन अतः वाहर धावन के तोहरा कुच्छ प्रयोजन न है ॥ ५२ ॥

॥ श्लोकः ॥

यदिते छुद्रतानैव याति याहि तदामनः ॥
परन्तुमद्धवचोमत्वामाविज्ञानंहितंविना ॥ ५४ ॥

॥ अर्थः ॥

अव पुनः युक्ति से मनके उपदेश कर हैं कि हे मन यदि नामजो तोहर छुद्रता न जाय तो 'याहो' नाम 'जा' परन्तु हमार वचन मानके 'जा' कउन वचन 'कि' विज्ञानजी हैं से तो हरहित है तेकरा विना मत जा अर्थात् जहां जा तहां ज्ञानसंयुक्तजा ॥ ५४ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहोमनोऽतिपातित्वं मृतान्दृष्ट्वापिसंगिनः ॥
करोषिनहृदित्रासंप्रीतिं वघ्नास्यथोजनैः ॥ ५५ ॥

॥ अर्थः ॥

अवकिंचित भय देखाके उपदेश कर हैं कि अहोमन

मनई वड़ा पातित्य है नाम पतिते है कि जे तोहर संगी है से लोग तोहरा देखइते सरइत हैं परन्तु संगी के भरव देखके भी तूं हृदय मे चास न कर नाम भयन कर चहुपुनः अन सभ से प्रीति वाधव ईहे पतिते है ॥ ५५ ॥

॥ श्लोकः ॥

वदन्तिस्वस्वकार्य्येषुजनाबहुविधाइह ॥
किंसुखंस्वसुखंहित्वा मनस्तच्छ्रवणात्तव ॥ ५३ ॥

॥ अर्थः ॥

अव पुनः उपदेशकर हैं कि इह नाम यह संसार मे बहुविध जन हैं अपन अपन का‍र्य में अनेक विधवचन वोलइत रह हैं परन्तु ए सुखनाम अपन सुख छोड़के तोहरा उ सव वचन श्रवण करवा से कउन सुख हो है अर्थात जसव वचनसे दुखे हैं स सुख में मग्न होअ ॥ ५६ ॥

मा याहिकुत्रचिच्चेतः प्रीतिंकुरुचिदात्मनि ।
यदाकदान्यसंगेनरोदिष्यसिनवुध्यसे ॥ ५७ ॥

॥ अर्थः ॥

अव मनके अन्य वस्तु में संग परित्याग करके कह हैं कि हे चेतः नाम हे चित्त ! कहो मतजा चिदात्मा नाम चैतन्य जे आत्मा है ते करा विषे प्रीति कर काहे की यदा कदा नाम जव अन्य संग ते रोदन भी करह तथापि नवूझ ॥ ५७ ॥

विचारयतविद्वांसोयूयं च पूरुषाइह
यदेच्छारहितानांवोऽव्यवहारः क्वातिष्ठति ॥ ५८ ॥

॥ अर्थः ॥

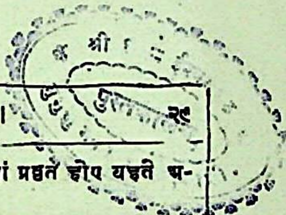
अब विद्वान्लोग से अद्वैत निष्ठा- कारा वहै कि हे विद्वांसः नाम हे विद्वान लोग विचारतो कर इत जा तोहरा लोग काई को यूयं नाम तुहों सभनो यह संसार में पुरुषइ नाम पुरुषार्थ युक्तइ विचार कइ हे कि जब तुइच्छा रहित होइ नाम जेह काली ताहरा लोग के इच्छा कुछ नउठे औइ काल में तोहरा लोग के अनेक व्यवहार जेहे से क्वातिष्ठत नाम कहां रह है अर्थात् वह कालमें अद्वैत हय व्यवहार माथ द्वैत हय से व्यवहार अनित्य है येतं वं इच्छा रहित मं न बूझ परे ॥ ५८ ॥

॥ श्लोक ॥

अन्धकारेघनेचक्षुर्विद्यमानंयथानसत् ।
तथासुपुप्तिकालेहिज्ञानंकुत्रप्रवर्त्तताम् ॥ ५९ ॥

॥ अर्थ ॥

कदाचित सन्देह होयकि ज्ञानभोती सुषुप्तिकाल में न बुझ परे यह से ज्ञान भी अनित्य है यह सन्देह के दृष्टान्तद्वारा निवारहय कि जइसे अन्धकार घनमें नाम पूर्ण अन्धकार में चक्षुर्नाम नेत्रसे विद्यमान भी हे तथापि न सत्नाम नहीं ए तुल्य है अर्थात् अन्धकार मे सभ वस्तु ढक हो गेल नेत्र कौन वस्तुपर जाएतइ ऐसे सुषुप्ति काल मे सभ वस्तु तमोगुण मे झक जाहे तब वह का में



ए जो ध्यान है से कुछ प्रवर्त्तताम् नाम कहां प्रवर्त्त होए यहते अ-
विद्या नाम वूक्ष पर है ॥ ५९ ॥

॥ श्लोक ॥

अहोविदूरगावार्ताजानांतिसततंनराः ।
तथापिपूर्णमात्मानंदेहगंमन्वतेऽवुधाः ॥ ६० ॥

॥ अर्थ ॥

अव जन सभ सभ वात जान के भी आत्म परिचय न करे इहे
आश्चर्य्य है कि विदूरगा वार्ता नाम वहुत दूरके वार्त्ता सतत सदा
नर जो मनुष्य सभ है से जानता भी है तथापि सर्वत्र पूर्ण जो आत्मा
है तेकराके केवल देह मे मानताहै यह ते अवुध नाम अज्ञान
सभ है ॥ ६० ॥

॥ श्लोक ॥

शब्दं रूपं रसं गंधं स्पर्शं जानासिचेत्तदा ।
जानीहितवलीलेयं माकांक्षांकुरुदुःखदाम् ॥ ६१ ॥

॥ अर्थ ॥

अव शब्दादि पञ्च विषय मे कांक्षा परित्याग करे कहै छै कि
शब्दादि जो पाञ्च विषय है तेकरा के चेत् नाम जौतु जानह तो जा-
नीहि नाम जान परन्तु इ शब्दादिक तोहर लीला छय यह सभ मे
कांक्षामत कर नाम इ सभ की संगह के इच्छामत कर काहे की
यह मे जो कांक्षा है से दुःखदा है नाम अयात दुःखदेहै ॥ ६१ ॥

॥ श्लोक ॥

पञ्चानांविषयाणान्तुमिथ्यात्वंस्पष्टमेवहि ।
अतः कुतूहलं वेत्तुरीश्वरस्यावगम्यते ॥ ६२ ॥

॥ अर्थ ॥

अब विषयादिक के परमेश्वर की कौतुक वर्णन करत्य वि पांच जो विषय हैं तेकर मिथ्यात्व नाम असत्यता अष्टे है नाम प्रत्यक्ष है अतः नाम अतीवे वेत्तानाम ज्ञाता जेहे ईश्वर तेकर कुतूहलनाम खेल बूझ पर है ॥ ६२ ॥

॥ श्लोक ॥

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धैर्ज्ञानंविराजते ।
अध्यारोपोभिधानानांददातिविदुषांभ्रमम् ॥ ६३ ॥

॥ अर्थ ॥

अब अनेक नामें द्वारा विद्वान के भ्रम कह है कि शब्दरू रस स्पर्श गन्ध यह सभ रूप से ज्ञान जेहे से विराज है पर अभिधान जेहे शब्दादि अनेक नाम तेह नाम सभके जेहे अध्या रोपनाम एक वस्तुमें एक नाम के आरोपन सेई विदुष नाम वि द्वान विवेकी के भ्रम देहे अर्थात् अनेक नाम द्वारा द्वैतभ्र हो है ॥ ६३ ॥

॥ श्लोक ॥

आरोपिताभिधानानां कुर्य्याद्विस्मरणंयदि ॥
क्षणेनाविश्वरूपःस्याज्जन्मनाशविवर्जितः ॥ ६४ ॥

॥ अर्थ ॥

अब सभ नामके विस्मरण करना से शीघ्र निजरूप कीं प्राप्ति कह है कि आरोपित यतनाये अभिदान कहीं नाम जय तेकरा

यो विस्मरण करदेवे तब चर्षि भरमे जन्म नाश से रहित विश्व रूप हो जाए अर्थात जब नाम विस्मरण होय तब रूप भी विस्मरण हो जायत तब नाम रूप से भिन्न जड़सन संसार होय सेइरूप होजाय ॥ ६४ ॥

॥ श्लोक ॥

आरोपिताभिधानानां कु र्द्विस्मरणंयदि ॥
स्वयन्तर्हिविजानीयाद्द्वैताद्वैतस्यनिर्णयम् ॥६५॥

॥ अर्थ ॥

अब नामके विस्मरण से द्वैत अद्वैत के भी परिचय कहे हैं कि आरोपन कएल जे नाम है तेकरा के जो विस्मरण करे तब स्वयंनाम अपने द्वैत अद्वैत के निर्णय जान जाय अर्थात नामहि द्वैत है एकरा विस्मरण में अद्वैत सिद्ध है ॥ ६५ ॥

॥ श्लोक ॥

शब्दरूपरसस्पर्शगन्धेभ्योऽन्यन्नविद्यते ॥
चिदात्मवेद्यमात्रेभ्योऽध्यासोभेदस्यकारणम् ॥ ६६ ॥

॥ अर्थ ॥

अब एक विध संसार मे भेद क कारण संग के कहे हैं कि शब्दादि जे पांच है तेहसे अन्यत् नाम दोसर कुछ न है अर्थात समस्त संसार वहो पांच है इ पाचों कैसन है कि चैतन्य आत्मा के वेद्यमात्रहय नाम आत्मा ज्ञाता है विषय ज्ञेय है नाम आत्मा से जानलजा है परन्तु असंख्य भेद जे बुझपर है तेकर कारण अध्यास है नाम सङ्ग जे है भेद कारण है ॥ ६६ ॥

॥ श्लोकः ॥

नविभेदस्तुबोधेस्तिसर्वजन्तुषुकेवले ।
मृषाबोध्यविभेदेन द्वैतवादस्य कल्पना ॥ ६७ ॥

॥ अर्थः ॥

अब बोध अरु बोध्य की भेद ते द्वैताद्वैत देखा व कहेँ कि सर्व जन्तु मेंये बोध है केवल तेंह मे कुछ विभेद न है अर्थात बोध जे है से सभ जन्तु मे एकै है परन्तु मिथ्या ये बोध्य नाम विषय तेकरा भेद से द्वैत वाद की कलपना नाम रचना है ॥ ६७ ॥

॥ श्लोकः ॥

स्थूलं कृशं बृहत् स्वल्पं यद्यल्लोके प्रदृश्यते ।
न रूपस्पर्शतो भिन्नंनाम मिथ्या विमोहदम् ॥६८

॥ अर्थः ॥

अब नाम जेहै अनेक तेकरे भ्रम कै देनिहार वर्णन करैं कि स्थुलनाम मोटा कृशनाम पातर बृहतनाम बडा स्वल्पनाम छोटा अइसन जे जे वस्तु लोक मे देख पर है से सभ रूप अरु सर्श यह ते भिन्न न है अर्थात सभ रूप सर्श है परन्तु अनेक मिथ्या नाम जे है सेह विमोहद है नाम भ्रम के देनिहार है ॥ ६८ ॥

॥ श्लोकः ॥

न भोगो विषया नान्ते देहेन भवति क्वचित् ।
यतस्सोपिजडो वेद्यो वेत्तात्वंसर्वगःप्रभुः ॥६९॥

॥ अर्थः ॥

अब विषय के भोग देह द्वारा आत्मा मे बूझा है तेकरा खण्डन कर है कि देह द्वारा विषय सबके भोग कथित नाम कबहो तोहरा नहोय का है कोयतेँ से जे देहहै से मौजड है अरु वेघ हेतु देह से भी वेताह नाम जान निहारह अरु सर्वज्ञह नाम सर्वज्ञ पूर्णह अरु प्रभुनाम समर्थह ॥६८॥

॥ श्लोकः ॥

दुःखे सुखं सुखेदुःखं सावधानो विदांकुरु ।
योगासिध्याल्पकालेन स्वतन्त्रत्वंयदीच्छसि ॥७०॥

॥ अर्थः ॥

अब मोक्षस्वतन्त्र होय के उपचार कह हैं कि अल्पकाल कर के योग सिद्धि से स्वतन्त्रत्व के नाम स्वतन्त्र होय के जो इच्छा कर इतहोब तो सदा सावधान हो के दुःख में सुख अरु सुख मे दुःख के विचारकर दुःख मे सुख भावयह प्रकारते करे कि दुःख तो पाप के फल है तेकर भोग जो हो है तो अपूर्व है यतेँ पाप छुटैत है अरु सुख मे दुःख बोध यह प्रकार तेकरे कि सुख तो पुण्यघटैत है तब पुनः तो पाप भोग होयत ईहते पुण्यके नाशमें दुख माने ॥ ७० ॥

॥ श्लोकः ॥

याऽहन्ताममतादेहे सायथास्याच्चिदात्मनि ।
तथाप्रयत्नतःकुर्याद्वृथासर्वज्ञतान्यथा ॥७१॥

॥ अर्थः ॥

अब अपना शरीर मे जे अहंभाव है अरु अपन संबंधी जे स्त्री पुत्रादिक हैं तेकरा शरीर मे जे मम भाव है नाम हमर ई स्त्री है पुत्रादिक है इजे दुनो भाव देह मे हैं तेकरा की पृथक करे कहै हैं कि जे अहंता नाम अहंभाव अरु ममता नाम मम भाव देह विषे यह से भाव जेह प्रकार ते चिदात्मा जे है चैतन्य आत्मा तेकरा विषेह्नोयं तहसन प्रयत्न से करें अर्थात देह की विषे आत्मा है तेकरा विषे अहंमम शब्द की भाव करे अरु देहतो अनित्य है यहते देहमे इ दुनो भाव करे अन्यथा नाम अइसन भाव जो न करे तो सर्वज्ञता नाम हम सर्वज्ञहो सभवार्त्ताहम जानहो अइसन जे सर्वज्ञता मान है से वृथा नाम व्यर्थ है ॥ ७१ ॥

॥ श्लोकः ॥

शत्रुभिर्हृतराज्यस्य ममतादेहमात्रके ।
यथातथैवजीवस्य माययाविवशस्यवै ॥ ७२ ॥

॥ अर्थः ॥

अबमाया द्वारा देहे भरमे ममता जीव के दृष्टान्त सहित कहै है कि जइसे शत्रु से राज्य हरण हो गेल है जे राजा के तेह राजा के ममता देहे मात्र नाम देहे भरमे रहजा है तहसहो माया से विवश जे जीव है तेकर भी ममता देहे भर मे हो है ॥७२॥

॥ श्लोकः ॥

प्राप्तराज्यस्यानिःस्वस्यममतावर्द्धतेयथा ।
तथाविज्ञानिनोऽज्ञस्यस्वयंसर्वत्रपूर्णता ॥७३॥

॥ अर्थः ॥

अप जीव के सर्वत्र पुर्णता दृष्टान्त द्वारा कहते हैं कि जइसे निःस्वजे है दरिद्र तेकरा जो राज्य प्राप्त हो जा है तब घोकर जइसे ममता वढ़इय तइसही अज्ञनाम अज्ञान जेहै तेकरा जब विज्ञान प्राप्त हो है तब विज्ञानो जे अज्ञ हैं तेकरा स्वयं नाम अपने सर्वत्र पूर्णता नाम हमतो सर्वत्र पूर्णहि अइसन भाव हो जा है ॥ ७३ ॥

॥ श्लोकः ॥

साक्षात् कृत्वा स्वरूपंयो बुद्ध्यादिममतांत्यजेत् ।
परात्मनेसराजास्यात्तस्यामात्यइवेश्वरः ॥ ७४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब शरीरादि मे ममता परित्याग कैला पर जीव के राजा रूपवर्णन करहैं कि स्वरूपनाम अपनजे रूप हैं तेकरा साचात नाम प्रत्यच करके अरू बुद्ध्यादिक मे जे ममता है सेत्याग कर देये तब परात्मा जे है इश्वर तेकरा अर्थे इजीव राजा हो जाय अर्थात राजा सदृश्य निश्चिन्त हो जाय अरू इश्वर तेह जीव के आमात्य नाम मंत्री के सदृश हो जाय ॥ ७४ ॥

॥ श्लोकः ॥

परमात्मकृतेकार्य्ये सर्वस्मिन्ममतां व्यधात् ।
हेतुनानेन वद्धोसौमुच्यते तत्समर्पणात् ॥ ७५ ॥

॥ अर्थः ॥

अब जीव के बंधन अरू मुक्त के कारण कहइय कि परमात्मा

नी करना येकार्यहय समस्त संसार तेहमे अपनाई ममता विधाय जीवका एक तेहो हेतु येहये जीवहय से बंध यह पुनः सभकार्य नामसभ कर्म परमेश्वर मे समर्पण करना से मुच्यते नाम मुक्त हो याय संसार बंधन से छुटजाय ॥ ७५ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहंकारादिकं सर्वंसमर्प्य परमात्मने ।
स्वयंभवतिनिश्चिन्तस्स आत्मापरमात्मनः ॥७६॥

॥ अर्थः ॥

अब अहंकार दि के परमेश्वर मे समर्पणतें जीव की निश्चि ता कह हयकि अहंकारा दिकयतना जेसभ वस्तु हयसे परमात्मा जे इश्वर हय तेकरा अर्थे समर्पण कर के तवसे आत्माजे हय जीव से परमात्मा से भी स्वयंनाम अपने निश्चिन्त हो जा हय ॥ ७६ ॥

॥ श्लोकः ॥

अविद्याप्रभवास्सर्वे येऽहंकारादयःपुरा ।
भक्त्यापरात्मनस्सत्तुविद्यारूपाभवन्तिते ॥७७॥

॥ अर्थः ॥

अब परमेश्वर के भक्ति से विद्या के उत्पत्ति कह हय कि पुरानाम पूर्वे ये अहंकारादिक हय से अविद्या ये अज्ञान हय तेह से भवनाम उत्पन्न हय सोहो अहंकारादिक परात्मानाम परमेश्वर के भक्ति करके सतजे सज्जन हय तेकरा विद्यारूप होया हय अर्थात विषय से निवृत्त होकर के अहंकारादिक सब परमेश्वर सन्मुख प्रवृत्त हो हय ॥ ७७ ॥

॥ श्लोकः ॥

वालोऽज्ञानवशादेकमर्थं जानाति न स्वयम् ।
सएवपठनात्पश्चाद्विद्यावान् ग्रन्थकारकः ॥ ७८ ॥

॥ अर्थः ॥

अब पढन के सेवन से अज्ञाननाश अरु ज्ञान की उत्पत्ति कह हय कि वालजे हय वालक से अज्ञान वसते पहिले एको अर्थं स्वयं नाम अपने ग्रन्थ के न जाने से ह्वोलक पढलावे पीछु विद्यावान हो जा हय अरु ग्रन्थ कारक नाम ग्रन्थ केकरनिहार होया हय इ श्लोक पूर्व श्लोक के दृष्टान्त वत वुझ पर हय काहे कि अइसही भक्तिकर के अहंकारादि विद्या रूप हो हय ॥ ९८ ॥

॥ श्लोकः ॥

मृषात्वंदृश्यमात्रस्यब्रह्मत्वंस्वस्यसर्वदा ।
विभावयतियस्तस्यभवत्येवस्वतन्त्रता ॥ ७९ ॥

॥ अर्थः ॥

अब भावना द्वारा स्वतन्त्रता वर्णन कर हय की दृश्यमात्र के नाम संसार भर के मृषात्वनाम मिथ्यात्व भावना करे की संसार सभ मिथ्या हय अरु स्वस्यनाम अपना के सर्वदा नाम सदा ब्रह्मत्वनाम ब्रह्म भावना करे अइसन विभावना सदा येकर हय ते करा स्वतन्त्रता भवत्येव नाम होय वे कर हय अर्थात ब्रह्म भावना ते ब्रह्म हो जा हय तव केकर परवस होय ॥ ९९ ॥

॥ श्लोकः ॥

स्वात्मासाक्षात्कृतोयैर्न देहेऽहंममताकुलैः ॥
चर्ममांसमयेतेषां वैदुष्यंशुकभण्डवत् ॥ ८० ॥

॥ अर्थः ॥

अब जे लोग आत्मा के साक्षात कारन कैल तेह लोग के निन्दा कर हय कि चर्म मांस मय ये देह है तेह मे अहं भाव से सदा व्याकुलजे हय से एह देह मे जो आत्मा नाम अपनरूप के साक्षात्कार नकैल तेह लोगकेवे दुष्य नाम विद्वानता पंडिताइ कइसन हय कि शुकभंडवत नाम जइसे सुगा अरु भांड बहुत श्लोकादिक जान है परन्तु अपना में ओह श्लोकादिक के त नबूझ परे तइसहीं ओह लोग कं पंडिते कहे भर है ॥ ८ ॥

॥ श्लोकः ॥

द्रष्टाश्रोतापरःस्वीयो निन्दकोऽथप्रशंसकः ।
सर्व्वेमिथ्याविनश्यन्तिव्यर्थेहालौकिकीसताम् ॥८१॥

॥ अर्थः ॥

अब सज्जन लोग जेलौकि कलोक संबंधी चेष्टा व्यापार का हय तेकरा के व्यर्थ कह हय कि द्रष्टा नाम देषनिहार अरु श्रोता सुन निहार पर नाम पराया शत्रु अरुस्वीय नाम अपन जन अरु निन्दक अरु प्रसंसक नाम प्रसंसा के करनिहार इसभ मिथ्या हय विनश्यन्ति नाम सभ एक काल मे नाश के प्राप्त होआ हय अतः सतजे विवेकि हय तेह लोग के लौकि की जे इच्छा चेष्टा हय से व्यर्थ हय एह अइसन भावहए कि "लौकिक व्यवहार जे

लोग घर हय से देखावे का अर्थे सुनावे का अर्थे प्रभु के अर्थे शास्त्रो के अर्थे निन्दक के अर्थे येहमे के उ निन्दान करे प्रशंसक के अर्थे से देख निहार सुन निहार आदिने के सभजव मिथ्ये हय तब एउ सभके अर्थे लौकिक व्यवहार कर पारलौकिक छोडके व्यर्थे हय ॥ ८१ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहोसुदुर्गमोदेशो यस्त्वद्वैताभिधोविशाम् ।
हसतो रूदतो जीवा नेकं पश्यन्तियद्गताः ॥८२॥

॥ अर्थः ॥

अब विवेकि लोग के जे अद्वैत पद हय तेकरा के दुर्गम वर्णन कर हय कि यिदांनाम विद्वान विवेकी लोग के अद्वैताभिध-नाम अद्वैत नाम करके जेदेश हय से अहोनाम आश्चर्य हय अरु सुदुर्गमहय नाम शीघ्र प्राप्त होय के योगन हय कठोर हय काहे की येह देशमे प्राप्त हो के रह के एक जीव हंस हत है एक रोहत है दुनो के एक से देख हय ॥ ८२ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहोसुसुखदेदेशे रमन्तेऽद्वैतवादिनः ।
अनित्यत्वादिदंमिथ्यामत्वासुखहदोऽचलाः ॥ ८३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब अद्वैत वादी के देशके बड़ाई कर हैं कि अहो आश्चर्य सुन्दर सुखद देश में अद्वैत वादी लोग रमण कर हैं ई संसार अनित्य है एह ते मिथ्या मान के अचल हो जा हैं सुख ह्रदनाम

सुख हृदय में प्राप्त करते हैं अर्थात् दुःख के वस्तु के मिथ्या बूझ के सदा सुख रूप में मग्न रहते हैं ॥ ८३ ॥

॥ श्लोकः ॥

अस्तुसत्यमसत्यं वा द्वैतंवाऽद्वैतमित्यलम् ॥
स्वशरीराऽस्थितिं बुध्वाचिति विश्रमणंवरम् ॥८४॥

॥ अर्थः ॥

अब शरीर के अनित्य बूझके चेतन्य आत्माके विश्राम करे कहते हैं कि संसार सत्य होय अथवा असत्य होय द्वैत हो अथवा सिद्धान्त अद्वैत होय इत्यलम् नाम व्यर्थ है अर्थात् कुछ होय पर से कुछ प्रयोजन न है परन्तु अपन शरीर के स्थिति नाम नाश बूझ के अर्थात शरीर तो एक दिन नष्ट हो यत अइसन बूझ के चित नाम चैतन्य विषे विश्राम करना वर हय नाम श्रेष्ठ है ॥ ८४ ॥

॥ श्लोकः ॥

कदापिन हृदाकार्य्या विषयेषुगुणस्मृतिः ।
योग हन्त्रीयतोमूलं प्रमादाभिनिवेशयोः ॥८५॥

॥ अर्थः ॥

अब विषय मे गुण स्मरण कयला से अनेक दुःख कहते हैं कि कबहीं भी हृदय करके विषय मे गुण स्मृति 'न' कार्य है नाम न करे योग्य है अर्थात विषय के गुण विचार न करे काहे की विषय से गुणस्मृति जे है से 'योग हन्त्री' है नाम योग के

समाधि है तेकर नाशकरनिहार है अरु यतेवे प्रमाद जो है निज रूपके भूल जाना अरु अभिनिवेश जो है विषय में चित्तकी प्रवेश होना यह दूनो की मूल नाम 'जर' कारण है ॥ ८५ ॥

॥ श्लोक ॥

मिथ्याज्ञात्वापि संसारं पुनस्तच्चर्चयासुखी ॥
हृदाभवातियस्तस्यपरमात्मासुदुर्ल्लभः ॥ ८६ ॥

॥ अर्थ ॥

अब जेकरा संसार के विषे सुख बूझ पर है तेकरा अर्थे परमात्मा के दुर्लभ कहै हैं कि संसार की मिथ्या जान के भी अब पुनः संसार की चर्चा सुनके हृदय से जे सुखी हो है नाम जेकरा सुख बूझ पर है तेकरा परमात्मा सुदुर्लभ हैं अर्थात् परमात्मा ओकरा न प्राप्त हो सकै ॥ ८६ ॥

॥ श्लोकः ॥

अवश्यंसंयमःकार्योवाक्कायमनसास्मृतम् ॥
सुखमाकांक्षतातावत् नसदारोगिणांयथा ॥८७॥

॥ अर्थः ॥

अब मन वचन शरीर के संयम करे कहै हैं कि जेकरा सत नाम सत्य सुखके आकांक्षा नाम इच्छा होय तेकरा अवश्य 'वाक' नाम वचन अरु काय शरीर अरुमन एह सबके संयम कार्य नाम करे योग्य है संयमभी तावत् नाम तवहीं तक जब तक सुख न प्राप्त होय अरु सदा न करे योग्य है दृष्टान्त कहै हैं कि जइसे

रोगी सवके संयम जब तक सुखन होय तवहीं तक हो है तदसहीं ॥ ८७ ॥

॥ श्लोकः ॥

इति किं तेनकिंक्वापि क्वाप्यहोकौतुकं विभोः ॥
सर्वमायेति वा वाग्भिः शान्तिमेतिमनोजवः ॥८८॥

॥ अर्थः ॥

अब मन के संयम के युक्ति वचन कहे हैं कि जब मन कहीं जाय तब कहैं अइसन वचन कहे कि इति किं नाम' ई का है अर्थात कुछ न है अरु क्वापि नाम कहें तेन किं 'नाम' जो तू उहा गेल तेहसे का अर्थात तेहसे भी कुछ फल न है अरु क्वापि नाम कहें अहो कौतुकं विभोः नाम ई सब विभु परमेश्वर के आश्चर्य लीला है अरु का वहीं अइसन कहे की ई सब माया है इहे सब वचन से मन के जे 'जव' नाम वेग है से शान्ती के प्राप्त हो है ॥ ८८ ॥

॥ श्लोकः ॥

यदोत्थायभवन्त्येताश्चलितुंचित्तवृत्तयः ॥
तदैवचेदसङ्गस्सन्द्रष्टाऽरंयोगमाप्स्यसि ॥ ८९ ॥

॥ अर्थः ॥

अब शीघ्र समाधि लाभ के युक्ति कहे हैं कि जब चित्त की वृत्ति उत्थाय नाम उठ के चलितुं नाम चले पर होय तदैव नाम तवहीं ए जो असंग हो के द्रष्टा होय नाम यहा चित्त वृत्ति जाय तहां अपने प्रवृत्त न होय किन्तु पृथक होके देखइत रहे कि

करै करै ना है तब अरं नाम शीघ्र योग नाम स्थिरता समाधि के प्राप्ति करे ॥ ८९ ॥

॥ श्लोकः ॥

सुषुप्तिसमयेसौख्यं न जाग्रत्तुल्यमित्यलम् ॥
विकलोविषयैर्निद्रां करोति सुखलब्धये ॥ ९० ॥

॥ अर्थः ॥

अब तीनो अवस्था में सुषुप्ति अवस्था में अधिक सुख वर्णन करै हैं कि सुषुप्ति समय में सौख्य नाम सुख जाग्रत अवस्था के तुल्य न है इति नाम अइसन जे कहब हैं से अलं नाम व्यर्थ है काहे को जाग्रत अवस्था में जब विषय से विकल हो है तब सुख लाभ के हेतु लोग निद्रा कर हैं नाम 'सूत है ॥ ९० ॥

॥ श्लोकः ॥

सुषुप्तिजं सुखंलब्ध्वा व्यवहारे प्रवर्त्तते ॥
जीवोनक्तंदिवातस्मात्करोतिशयनंपुनः ॥ ९१ ॥

॥ अर्थः ॥

अब सुषुप्ति के बल से व्यवहार करे में समर्थता कह हैं कि सुषुप्ति काल केजे सुख है ते करे लाभ करके जीव जे है से नक्तं दिवा नाम दिन रात व्यवहार में प्रवृत्त हो हैं तस्मात् नाम तेही ते पुनः शयन लोग कर हैं नाम पुनः थोड़ो सुख के अर्थे सूत है ॥ ९१ ॥

॥ श्लोकः ॥

तमसाच्छादितायान्तु बुद्धयामीदृक्सुखोद्भवः ॥
किंपुनर्निर्गुणज्ञान मग्नायां सुखवर्णनम् ॥९२॥

॥ अर्थः ॥

अब निर्गुण अवस्था में एह ते अधिक सुख वर्णन करे हैं कि जब सुषुप्ति काल में तमोगुण से बुद्धि के आच्छादित नाम झंकैला पर ई दृक् नाम अद्वसन सुख के उद्भव नाम उत्पत्ति हो है तब निर्गुण ज्ञान में जब मग्न नाम डूब जाय बुद्धि तेह सुख के कौन वर्णन है अर्थात् ओह सुख के वर्णन न हो सके ८२

॥ श्लोकः ॥

सुप्तप्रवोधयोः सन्धौयावस्थासाज्ञानिर्गुणा ॥
नाहंकारोनबुद्धिश्चतत्रज्ञानस्वयंप्रभम् ॥ ९३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब निर्गुण अवस्था के परिचय कहे हैं कि सुप्त जे है निद्रा अरु प्रवोध नाम जागरण एह दुनो के सन्धि में जे अवस्था है नाम जागरण के अन्त निद्रा के आदि एक रे सन्धि नाम मध्ये बीच में जे अवस्था है से तो निर्गुण अवस्था कहावे है काहे कि ओह काल में न अहंकार है अरु न बुद्धि है किन्तु तब नाम तेह काल में स्वयं प्रभनामस्व प्रकाश ज्ञान जे हैं, सेइ है ॥ ८३ ॥

॥ श्लोकः ॥

यदायदान्यदापिस्याच्चित्तंज्ञानमयांस्थरम् ॥
ससमाधिस्तुरीयाख्यो ह्यवस्थात्रितयात्परः ॥ ९४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब दोसरा समय में भी निर्गुण अवस्था के परिचय कहै हैं कि जब २ अन्य दा नाम दोसरो समय में चित्त स्थिर होय संसार

है कहीं न लगन होय ज्ञान मय भेल होय सेह समाधि कहावे है तीनो अवस्था से परे तुरीय नाम चउठा अवस्था कहावे है ॥८४॥

॥ श्लोकः ॥

शास्त्र कर्मादरस्तावद्यावत्तत्त्वंनभासते ॥
धारणादरणंपश्चद्यावद्देहादिविस्मृतिः ॥ ९५ ॥

॥ अर्थः ॥

अब निर्गुण अवस्था के प्राप्त भेला पर साधन के परित्याग करै कहै हैं कि शास्त्र में जे कर्म कहल है तेकर आदर नाम करना तावत नाम तबही तक है जब तक तत्व न भासे नाम पर तत्व जब तक साचात् कार न होय तेकरा पश्चात् धारणा नाम सदा संसार से 'तीर के' नाम हटा के या खींच के तत्व में चित्त के रखना तेकर आदर करै नाम सदा एही अभ्यास करै एकर भी आदर तबहीं तक जब तक देहादि के विस्मृति नाम विस्मरण न होय अर्थात् देहादि विस्मरण भेला पर ता सदा अपने आनन्द रूप हो जा है ॥ ८५ ॥

॥ श्लोकः ॥

यत्रयत्र करोमीतिभावोऽज्ञानिनिविद्यते ॥
तत्रतत्र विजानामीत्यन्तर्ज्ञानिनितिष्ठति ॥ ९६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ज्ञानी अज्ञानी के भेद देखावे हैं कि यत्र २ नाम जे २ वस्तु में अज्ञानी के हृदय में करोमि अइसन भाव है तत्र २ नाम तेह २ वस्तु में ज्ञानी लोग के अन्तः करण में विजानामि अइसन

भाव रहै है अर्थात् अज्ञानी लाग कहै हैं कि हम दूकर हत हौ एकर कर्ता हमहो पर ज्ञानी कहै हैं कि हम एकरा जान हो एकर ज्ञाता साक्षी रूप हमहो ॥ ८६ ॥

॥ श्लोकः ॥

साधनानिसहस्त्राणिहित्वेदंकुरुसाधनम् ॥
यथानहृदयाद्यायाद्विजानामिपदंक्षणम् ॥ ९६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब सदा ज्ञानी के जे भाव है ते कारे साधन करे कहै है कि हजार हो साधन हित्वा नाम छोड़ के इदं नाम इ साधन कर कि यथा नाम जेह में हृदय से विजानामि पदनाम हम ज्ञाता हो जाननिहार हो इ भाव क्षण भर भो न जाय सदा एहो साधन करके चाहो ॥ ८७ ॥

॥ श्लोकः ॥

यस्मिन् यस्मिन् क्षणेयद्यद्भाविदुःखंसुखञ्चवा ॥
तदवश्यंभवत्येवव्यथाविस्मरणंहरेः ॥ ६८ ॥

॥ श्लोकः ॥

अब सुख दुःखादि चिन्ता छोड़ के परमेश्वर के स्मरण करे कहै हैं कि जौन २ क्षण में जे २ सुख अथवा दुःख भावी होय से तो अवश्य होय वे कारे है तब जें अपने होय ते कारे चिन्ता में अबहरि परमेश्वर के विस्मरता कर देना हथा नाम व्यर्थ है ॥८८॥

॥ श्लोक ॥

व्यवहारदशालीलापरमार्थदशाभवा ॥
इतिजाननृहदालोकेनमोंहोविहरेत्सुखी ॥ ६९ ॥

॥ अर्थः ॥

अब संसार से निर्मोह हो के सुख पूर्वक विहार करे कहे है कि व्यवहार दशा के जो लीला है से परमार्थ दशा से उत्पन्न है ऐसन जाने त हृदय से लोक में निर्मोह हो के विहार करे सुखी हो जाय अर्थात् परमार्थ दशा के व्यवहार दशा कार्य्य है कार्य्य तो मिथ्या हो है अतः संसार जो है व्यवहार दशा ते करा मिथ्या बूझ के सुखी हो जाय ॥ ९९ ॥

॥ श्लोकः ॥

परमार्थदशात्माचित्व्यवहारदशाजगत् ॥
परमार्थदशासत्याव्यवहारदशामृषा ॥ १०० ॥

॥ अर्थः ॥

अब दूनो दशा के परिचय अरु सत्यता असत्यता कहे है कि चित् चेतन आत्मा जो है से इ परमार्थ दशा कहावे है अरु जगत जो संसार है से इ व्यवहार दशा कहावे है तेह में परमार्थ दशा सत्य अरु व्यवहार दशा मृषा नाम मिथ्या है ॥ १०० ॥

॥ श्लोक ॥

ज्ञात्वासत्यंनिराकांछोगीतावाक्यात्सुखीभवेत् ॥
विगतेच्छाभयक्रोधोयस्सदामुक्तएवसः ॥ १०१ ॥

॥ अर्थ ॥

अब सत्य के जान के सभ के कांछा परित्याग करके सुखी होय कहे है कि सत्य के ज्ञात्वा नाम जान के निरा कांछ हो के गीता वाक्य से सुखी हो जाय गीता वाक्य कहे है कि विगते-

च्छाभय क्रोध नाम जे इच्छा भय क्रोध एह तीनो से विगत नाम तीनों के जे छोड़ दे से सदा मुक्त रूप है ॥ १०१ ॥

॥ श्लोकः ॥

सत्संगेनजगन्मिथ्याज्ञात्वासत्यंतदीश्वरम् ॥
तत्कृपालब्धतत्त्वोयस्सस्वतन्त्रोऽन्यमुक्तिदः १०२

॥ अर्थः ॥

अब परमेश्वर के कृपा से जेकरा तत्व लाभ होगेल तेकर वर्णन करै हैं कि सत्संग से जगत् के मिथ्या जान के अरु ईश्वर के सत्य जान के अरु तेहो परमेश्वर का कृपा से जे तत्व लाभ कर ले है से स्वतन्त्र हो जा है अरु दोसरा के मुक्ति के दे निहार हो जा है अर्थात परमेश्वर जइसे स्वतन्त्र हैं नाम अपना वश में है तइस हो होजा है ॥१०२ ॥

॥ श्लोकः ॥

यथानुरक्ताव्यवहारमार्गेकदापिनात्मानमनुस्मरन्ति॥
तथायएनंमनसोपहायसदात्मरक्ताविभवोभवन्ति ॥

॥ अर्थः ॥

अब समर्थ होय के युक्ति दृष्टान्त सहित कहै हैं कि जइसे व्यवहार मार्ग में सदा अनुरक्त रहै हैं नाम लगल रहै है कोय अरु कब हीं भी आत्मा के स्मरण न करें तथा नाम तइसे इ जे व्यवहार मार्ग है तेकरा के जेमन से पहाय नाम छोड़ के सदा आत्मा में लगे हैं प्रीति करै हैं से विभु नाम समर्थ होजा है ॥१०३॥

॥ श्लोकः ॥

दिनंप्रयातिसर्वेषांयथादिष्टंप्रयास्यति ॥
वृथामोहवशाद्रामंविसृज्यविकलानराः ॥१०४॥

॥ अर्थः ॥

अब परमेश्वर को छोड़ के विकल लोग रहे है अपना व्यवहार मे तेकरा पछताव है कि यथा दिष्ट नाम जेकर जइसन प्रारब्ध है तेकर तइसन दिन प्रयाति नाम चल के जाइत है अव प्रयास्यति नाम चल के जायत तेकरा पर्यें वृथा नाम व्यर्थ मोह वश से रामजी के छोड़ के नर मनुष्य सभ विकल हो रहल है ॥१०४॥

॥ श्लोकः ॥

रामकृष्णनृसिंहादिलीलारूपैर्यईश्वरः॥
ददातिभजतांदिव्यंज्ञानंतस्मैनमोनमः ॥ १०५॥

॥ अर्थः ॥

अब एह ग्रतनके अन्तमें ज्ञान दे निहार जे परमेश्वर हय तेकरा नमस्कार करै हैं कि राम कृष्ण नृसिंहादि जे लीला रूप है तेह रूप से जे ईश्वर भजन के कर निहार लोग के दिव्य ज्ञान दे है सोन जे ईश्वर हइ तेकरा नमस्कार कर ही नमस्कार करही ॥१०५॥

॥ श्लोकः ॥

नाभिमानोममास्त्यत्रवक्तान्यः परमेश्वरः ॥
सिद्धान्तशतकन्त्वेतत्सहस्रश्लोककार्य्यकृत् ॥१०६॥

॥ अर्थः ॥

अब यह शतकको बड़ाई करे हैं कि यह मैं हमरा अभिमान न है नाम हम यह ग्रन्थ के कइलो अइसन अभिमान न है काहे कि वक्ता अन्य नाम दोसर परमेश्वर है अरु शतत नाम इ जो सिद्धान्त शतक है से सहस्र नाम हजार श्लोक के कार्य्य के करनिहार है ॥ १०६ ॥

॥ श्लोकः ॥

चैतन्यार्कप्रकाशान्तर्मृगतृष्णायितम्भवः ॥
किंसत्यलक्षणंतद्यन्नदृश्येतक्षणान्तरे ॥ १०७ ॥

॥ अर्थः ॥

अब यही ग्रन्थ के अन्त मे इहां से चार श्लोक के चतुश्लोकी नाम इय तेह में पहिले संसार के मृगतृष्णा सदृश कह के अब लक्षण द्वारा असत्य कहे हैं कि चैतन्य जो अर्क सूर्य है तेकरे प्रकाश के अन्तर नाम मध्य में मृग तृष्णायितनाम मृग तृष्णा के सदृश भव संसार है अतः सत्य भी न है काहे को इ कौन सत्य के लक्षण है कि जो क्षणान्तर में न देख परे नाम कबहीं कबहो न देख परे अर्थात इ तो असत्य के लक्षण है ॥ १०७ ॥

॥ श्लोकः ॥

मनसोस्त्विन्द्रियाणाञ्चजयेयत्नश्रमोमुधा ॥
यदिनामसृषादृश्यंकेवलंब्रह्मराजते ॥ १०८ ॥

॥ अर्थः ॥

अब इन्द्रिय अरु मन इ सभ के जीते के अर्थ जेपरि श्रमकोश

हो हैं तेहरा व्यर्थं कहे हैं कि मन के अरु इन्द्रिय सभ के जय नाम जीते में यत्न परिश्रम जो है से मुधा नाम व्यर्थं है का है कि यदि नाम यों दृश्य जो है संसार से वृथा नाम मिथ्या है ये सब ब्रह्म सर्वत्र विराजे हैं तेह से अर्थात् संसार कुछ है इडूनन है. तब मन इन्द्रिय सभ काहा जीतन एह ते सदा संसार भाव पृथक कर के सर्वत्र ब्रह्म दृष्टि करना यही साधन करे स्वतः इन्द्रिया दिक के पराजय होजाय ॥ १०८ ॥

॥ श्लोकः ॥

क्षणमात्रं न दृश्यस्य सत्यत्वं हृदि चिन्तयेत् ॥
स्यात्कांक्षा यदि दुःखस्य त्विनाशे सुखलब्धये ॥ १०९ ॥

॥ अर्थः ॥

अब सदा संसार को असत्य बूझे कहे हैं कि क्षणभर भी दृश्य के सत्य त्व नाम सत्य भावना हृदय में चिन्तवन न करे जो दुःख के विनाश के कांछा होए अरु सुख के लाभ के कांछा होय तब ॥१०९॥

॥ श्लोकः ॥

प्रमादाभिनिवेशाभ्यांमायाछलयतिद्रुतम् ॥
इतिविज्ञायधैर्य्येणनच्यवेतात्मतत्त्वतः ॥ ११० ॥

॥ अर्थः ॥

अब माया ठगिनी से चेतन्य रहे कहे हैं कि प्रमाद नाम निज रूप बिसरण अरु अभिनिवेश नाम विषय में चित्त के प्रवेश होना यही दु उपाय से माया द्रुत नाम शीघ्र छलयति नाम

छल करै है । ठग है अइसन जान के धीरता कर के आत्म तत्व के नाम निज रूप के स्मरण से न च्यवेत नाम न अलग होय ॥ ११० ॥

॥ श्लोकः ॥

चतुश्लोकीमिमां जानन्ननायासेन मुच्यते ॥
यदि मिथ्येन्द्रियार्थेषु भवेद्रतिविवर्जितः ॥ १११ ॥

॥ अर्थः ॥

अब चतुःश्लोकी के फल वर्णन करै हैं कि इ चतुश्लोकी के जे जानैत रहे से अनायास से नाम विना परिश्रमे मुच्यते नाम मुक्त हो जाय संसार से परन्तु मिथ्या जे इन्द्रियार्थं नाम विषय है तेह में जो रति विवर्जित होय नाम प्रीति न करे तब ॥ १११ ॥

॥ श्लोकः ॥

उपमा दर्शिता नाना सुहृद्भिर्वृत्तिवृत्तये ॥
विवादस्तत्र मूढानां कोपमा निर्गुणोपमे ॥ ११२ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ब्रह्म पक्ष में जहां तहां के दृष्टान्त है तेह में मूढ़ लोग के वाद देखावे हैं कि सुहृद जे हितकारी लोग हैं से ब्रह्म में चित्त कि वृत्ति के वृतिनाम लगी के अर्थे नाना उपमा देखावल है परन्तु मूढ़ लोग ते इसमें विवाद करै हैं कि जे निर्गुणोपम नाम गुणा भरु उपमा एह से रहित है अथवा जेकरा में निर्गुण अइसन उपमा है तेकरा में दोसर कौन उपमा है यही विवाद लोग करै हैं परन्तु उपमा तो चित्त कें प्रवेश के अर्थे कहल है ऐहते वारद करनिहार मूढ़ है ॥ ११२ ॥

॥ श्लोकः ॥

अहोवेदान्तशास्त्रस्यनैपुण्यंपक्षवर्जितम् ॥
यत्रेश्वरश्चजीवश्चकर्मब्रह्मचभावितम् ॥ ११३ ॥

॥ अर्थः ॥

अब वेदान्त शास्त्र की बड़ाई करे हैं कि वेदान्त शास्त्र की निपुणता अहो आश्चर्य है निपुणता कईसन है कि पक्ष वर्जित है नाम कुछ को कहीं पक्ष न कएल है यत्र नाम जेह वेदान्त में ईश्वर जीव अरु कर्म अरु ब्रह्म इस भावित है नाम निरूपण कैल है एह से पक्ष वर्जित है ॥ ११३ ॥

॥ श्लोकः ॥

ये ये मत्साधनेप्रत्तास्सुगमानुभवाहृदि ॥
प्रभुणातइमेसद्भ्योमयापिप्रकटीकृताः ॥ ११४ ॥

॥ अर्थः ॥

अब ग्रन्थ कर्त्ता कहे है कि हमरा साधन करै के समय में प्रभु परमेश्वर जे जे सुगम नाम सुलभ अनुभव हमरा हृदय में अर्पण नाम देलन सेह अनुभव हम भी सद्भ्या नाम सतलोग के अर्थें प्रकटी कृता नाम प्रकट कर देलो ॥ ११४ ॥

॥ श्लोकः ॥

कृत्वाकण्ठगताञ्छ्लोकानिमानर्थान्स्मरन्सदा ॥
समाधिजंफलंविद्वोविनायासमवाप्नुयात् ॥ ११५ ॥

॥ अर्थः ॥

अब एह ग्रन्थ के पढ़का के फल कहे हैं । के यह ग्रन्थ के स-

भ श्लोक के कण्ठ कर के अरु सदा ई सभ के अर्थ के स्मरण कर इत बिना आयासे समाधि के जे फल हव से विप्र नाम विवेकी अवाप्नुयात् नाम प्राप्त करे ॥ ११५ ॥

॥ श्लोकः ॥

अन्तर्ज्ञानीवहिर्भक्तः समयोचितधर्मभाक् ॥
यएवंवर्त्ततेलोकेतेनवुद्धंहरेर्मतम् ॥ ११६ ॥

॥ अर्थः ॥

अब लोक में निवहि योग्य उपदेश करे हैं कि अन्तःकरण से ज्ञानी होए नाम संसार के मिथ्या बूझे अरु बाहर भक्त होय नाम परमेश्वर के भजन अरु सेवन करे अरु जे वर्णाश्रम के व्यवहार में समय २ के उचित धर्म आवे से भी करे जे एह प्रकार से लोक में रहे है से हरिनाम परमेश्वर के मति बूझलक ॥ ११६ ॥

॥ श्लोकः ॥

यथास्वकृपयानाथसर्वंतत्त्वंसुबोधितम् ॥
तथाझटितमेचेतश्चिदानन्दमयंकुरु ॥ ११७ ॥

॥ अर्थः ॥

अब परमेश्वर से प्रार्थना करे है कि यथा नाम जैसे अपना कृपा कर के हे नाथ सभ तत्त्व रउरा बुझा देलो तइसहीं अब झटिति नाम शीघ्र हमर चित्त चिदानन्द मय कर दिहु ॥ ११७ ॥

॥ श्लोकः ॥

अज्ञानात्तत्कृत्तत्कृतंत्वेभगवन्ममतांऽपधाम् ॥
भुक्तंफलंमयातस्यस्वीयंस्वीकुरुपाहिमाम् ॥ ११८ ॥

॥ अर्थ ॥

पुनः प्रार्थना कर हैं कि हे भगवन् राउर कर्त्तव्य में नाम राउर कैल जो संसार है तेह में हम अज्ञानता से अपन ममता विधान कैलो नाम हमर इ सभ वस्तु है अइसन बुझलो तेकर फल हम भोग कैलो नाम एहो से वश होके अनेक जन्म दुःख भोगलो अब स्वीयं नाम अपन जो है समस्त वस्तु सो राउरा स्वो मुक्त नाम अपनो लिहु अर्थात् अब हम एह में ममता छोड़ को रउरा अपन ले लिहु अरु अब हमरा पाहि नाम रचा करु नाम अनेक जन्म दुःख से पृथक करके अपन शरण दिहु ॥ ११८ ॥

इति श्री राघवपुरवासि श्रीमहिविख्यातविद्वज्जनगणाग्रगण्य श्री धर्मदत्त मिश्रात्मज श्री मयानन्दमिश्र सुतगणेशानन्द मिश्र विरचितं सिद्धान्तशतकम् संपूर्णम् ॥

शुभ गंग बिहटाईश दक्षिण दिव्य नाम राघव पुरी । जंह बि प्यूह विशेष विद्या नीति रीति सभहीं धरे ॥ तंह नाम विश्रुत एक रद्युत मिश्र अन्त आनन्द जो । सोई लोक हित दश ग्रन्थ विरच्योपूर्ण ज्ञान तरु कन्द जो ॥ सुत ताहो मिश्र अनन्त तेहि के अर्थ कछु भाषा करी । सिद्धान्त भाषा प्रकाशिका तेहि नाम ज्ञान सगरे भरी ॥ सुनु धीर सज्जन मूढ़ तामम विप्रवर्णित ग्रन्थ को ॥ जानों अत्र अल्प मति अर्थ हम रचि अल्प मति जन हेतुको । नहि वेद जानों श्रुति न जानो स्मृति न कछु विज्ञान को ॥ विनुबोध छवट वर्णन कियो विज्ञ जन हास को ॥ करिहास सज्जन क्रोध अक्षर परि हरि देहु आय सुमूढ़ को ॥ जेहि ते कृतारथ हो इ जा वो रामपदतरु मूल को ॥ विनु राम पद तरु छांह बैठे विषय जात अभागई॥विनु सन्त आयसु कबहुं नहिदृढ़ रामपदमनलागई।

॥ दोहा ॥

अस विचार हिय राखि कै भाषा कियो समाप्त ।
यथा बुधिबल बूझि कै राम वास विश्राम ॥
प्रभु राम कृष्ण वाराह नर हरि मत्स्य आदि अवतार जी ।
अरु शिव देवी सकल सुर गण ब्रह्म रुद्र अरु योगी जी ॥
यह बार १ फिर नाइ २ वर अभय सो मोहि दीजिए ।
निज भक्त ज्ञानी सङ्ग सेवा दिव्य तत्त्व उर भासिए ॥
जग व्याप्त विष्णु पदाब्ज वन्दौ अब भव भ्रम नाश सों ॥
जग:पाधि:काटि कृपा चितै हरि जानि लेहु निज दास सों ॥
रस पृथ्वी ग्रह चन्द्र मा युत सम्वत इष मास ।
धवल पक्ष तिथि सूर्य की सोम दिवस प्रकाश ॥
प्रात समय यह ग्रन्थ को किये समाप्ति विचारि ।
मननन करत याको सदा लहै अवस्था चारि ॥

यस्माद्विश्वमिदं महत्प्रवहतिह्यन्तेचयस्योदरे
सर्वंतिष्ठतिसावकाशमधुनायेन त्वसंरक्षितम् ॥
भक्तायत्कृपयाभयंभवभंवस्वप्नेपिपश्यन्तिनो
पातान्तच्चरणौसदाममगतीमान्तारमेतामरम् ॥

इति श्री राघवपुर वासूयनन्द मिश्र विरचिता
सिद्धान्तभाव प्रकाशिका सम्पूर्ण ॥



॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ दृष्टान्तरत्नाकर।

नज्ञानंस्फुरतीहसक्तमनसां शङ्काकुलस्वात्मनां
शास्त्रैर्यद्यपिवोधयन्तिकृतिनस्तत्तत्कथाभिःपुरा ॥
दृष्टान्तेनविनास्थिरंनतद्हृदयेतत्वंविविच्येत्यहं
कुर्वेतत्सुखलब्धयेसुकृतिनांदृष्टान्तरत्नाकरम् ॥ १ ॥

सुखेसुखंनजानीयाद्दुःखेदुःखंतथातयोः ॥
संज्ञातारन्तुविजानीयाद्यदीच्छेद्विमुतांलघु ॥२॥

वेदोक्तमेवकर्त्तव्यंपुंभिः स्वार्थप्रसिद्धये ॥
यथास्थिताः पितुर्वाक्येबालकाः सुखभागिनः ॥३॥

सुखंक्वापिनजीवानांभगवद्विमुखात्मनाम् ॥
यथानृदेवचौराणांस्थितिः शङ्कितचेतसाम् ॥ ४ ॥

यथादलादिभिर्हीनाः द्रुमाः संयान्तिदुर्गतिम् ॥
तथासुकर्म्मभक्त्यादि रहितानीरसानराः ॥ ५ ॥

नशोभतेयथावृक्षः पत्रपुष्पफलैर्विना ॥
तथासुकर्म्मसद्भक्तिविज्ञानैरहितानराः ॥ ६ ॥

नश्वेतीक्रियतेवस्त्रंविषक्तंमलतैलकैः ॥
शीघ्रंयथातथाचित्तंविषयैर्मलिनीकृतम् ॥ ७ ॥
यथाझटितिरज्यन्तेवस्त्राणिविमलानिहि ॥
तथाहिविमलंचितंगृह्णातिभगवद्गुणान् ॥ ८ ॥
सुकर्म्माचरणात्क्षिप्रंप्रसीदतिमतिर्यथा ॥
नगुप्ततत्वमेतद्धिप्रभातस्नानशीलिनाम ॥ ९ ॥
इहैवस्वर्गजंसौख्यंलभन्तेकृतिनःस्फुटम् ॥
नानापुष्पादिभिर्नित्यंभगवत्पूजकायथा ॥ १० ॥
इहदुःसङ्गजोहर्षः परत्रतुसुसङ्गजः ॥
यथासिकतिलोदेशः प्रावृट्कालेसुखप्रदः ॥ ११ ॥
ऐहिकं न सुखंभव्यंभव्यमामुष्मिकंसुखम् ॥
यथेहबाल्यकौमाराद्यौवनस्थंचिरंवरम् ॥ १२ ॥
स्नेहवांस्तप्यतेतापैर्ननिः स्नेहःकदाचन ॥
यथाहिघृततैलाक्तावर्तिकादीप्यतेग्निना ॥ १३ ॥
अहोन्नतानृणांचित्रायतस्वयंसुखरूपिणाम् ॥
प्रवर्त्ततेवहिर्वृत्तिर्यथासुधनिनांकृपौ ॥ १४ ॥
अहोस्थितेसुखेप्यन्तर्दह्यन्तेचिन्तयाजनाः ॥
यथैवशैवलच्छन्नकासारेज्ञाः पिपासया ॥ १५ ॥

मनः कृतंसुखंदुःखंनामभातिनवास्तवम् ।
यथादुःखेसुखीधूरोमन्तोर्षाविकलः सुखे ॥ १६ ॥
क्वचिद्दुःखं सुखं नामजातिभेदेपिदृश्यते ॥
सुगन्धरमतेभृङ्गोदुर्गन्धेमक्षिकायथा ॥ १७ ॥
नवास्तवं सुखं दुःखंशैशवेयौवनेस्फुखम् ॥
यथाहिपठनंदुःखंविभात्यनाज्ञसम्भवम् ॥ १८ ॥
सात्त्विकेशुद्धचित्तानामितरेपान्तुराजसे ॥
सुखेसुखं यथाघस्रेशर्वर्य्यांसाधुचौरयोः ॥ १९ ॥
सात्त्विकेरमतेविद्वानविद्वान्राजसेसुखे ॥
यथा पद्माकरेहंसाः मण्डूका ग्रामगर्त्तके ॥ २० ॥
पूर्व्वकर्मानुगान्भावाननुतिष्ठन्तिजन्तवः ॥
ननवाननुवर्तन्तेजातिरूपादिकान्यथा ॥ २१ ॥
स्वभावःसर्वभूतानांयोनिवीजानुसारजः ॥
यथाहिवृश्चिकादीनांनशिक्षागुरुशास्त्रजा ॥ २२ ॥
सामीप्यंमहतांचित्तमवश्यंविशदंलघु ॥
विचारययथातारेजान्हव्याःकीदृशंमनः ॥ २३ ॥
नचित्तंसज्जतेदुःखेसुखेचविमलात्मनाम् ॥
यथाजलेमलेवापिकदापिविमलंनभः ॥ २४ ॥

अहोविमूढता देहेत्वङ्मांसरुधिराश्चिते ॥
रतिर्नृणांशुनांशुष्कयेयथास्थानिविदृश्यते ॥२५॥
वासनावलितोजीवःसंपतद्राहितःशिवः ॥
यथातमःप्रकाशाभ्यांकालोरात्रिंदिवाभिधः ॥२६॥
विद्याविद्यात्मिकेबुद्धीसदसत्सङ्गजेनृणाम् ॥
यथाहिमांशुतीक्ष्णांशुसङ्गाद्वायुस्तथाविधः ॥ २७ ॥
एकस्मादीश्वरात्सर्वंनिःसृतंविविधंजगत् ॥
विभावययथाबीजात्पत्रपुष्पफलादिकम् ॥ २८ ॥
शक्तिर्द्विधेश्वरस्येयंजड़चैतन्यरूपिणी ॥
विभावयेतिदुग्धस्ययथादधिघृतात्मिका ॥ २९ ॥
एकस्मिन्मृत्तिकापिण्डेमहामात्रोऽङ्कुशःकरी ॥
यथातथात्रिधाद्रष्टादृग्दृश्यमवगम्यताम् ॥ ३० ॥
ईश्वरादुत्थितंविश्वंकारणात्कार्य्यरूपकम् ॥
विश्वस्माच्चेश्वरः शक्त्यावृक्षाद्बीजंयथास्वजात् ३१॥
एकएवपरःकश्चित्सच्चिदानन्दलक्षणः ॥
विभातिस्वीययायाशक्त्याबहुधासमयोयथा ॥३२॥
अज्ञानांहृदयंब्रह्मिज्ञानिनामुदकंस्मृतम् ॥
विभावनीयंसर्वस्मिन्स्वभावेसुखलिप्सुभिः ॥ ३३ ॥

सदासङ्गस्वमात्रस्यचित्तंदुःखैर्नयुज्यते ॥
यथाहितृणवाःपङ्कैःप्रावृट्कालेपिबालुका ॥ ३४ ॥
विषयासङ्गहीनानांनिर्मलंशोभतेमनः ॥
यथातृणाद्यसंसक्ताजान्हवीतीरवालुकाः ॥ ३५ ॥
स्नेहवानीश्वरेनान्यः प्रकाशंलभतेजनः ॥
प्रकाशयतिलोकांश्चयथादीपः स्वयंगृहान् ॥ ३६ ॥
विवेकेनाविहीनानांनैहिकामुष्मिकंसुखम् ॥
यथाविहीननेत्राणांस्वरूपपररूपजम् ॥ ३७ ॥
परमात्मसुखन्त्वन्तर्नातिष्ठत्यविवेकिनाम् ॥
यथानफलमाधुर्य्यंवकाद्यामिषचेतसाम् ॥ ३८ ॥
उपदेष्टृषुविद्वत्सुवर्तमानेषुसत्स्वपि ॥
नात्मावगम्यतेमूढैर्दुर्ज्जनैः साधुतायथा ॥ ३९ ॥
देहेदृष्टिर्विमूढानांवर्द्धतेनपरात्मनि ॥
यथारात्रावुलूकानांप्रकाशेवासरेनतु ॥ ४० ॥
देहेहंकारवानात्मासुखीदुःखीचनस्वतः ॥
प्रतीयतेयथातातः पुत्रेसुखिनिदुःखिनि ॥४१॥
नज्ञानंनापिविज्ञानंविनासत्सङ्गतोभवेत् ॥
यथापुष्टिश्चतुष्टिश्चनतेंदाधिघृतान्नृणाम् ॥ ४२ ॥

असाध्यंनमनःशुद्धिकरणंसाद्भिरिच्छताम् ॥
यथाशरीरवस्त्रादिनिर्म्मलीकरणंजलैः ॥ ४३ ॥
युक्त्योपलभ्यतेस्वात्मासाक्षात्सत्सङ्गलब्धया ॥
निराकारोपिपूर्णोपिव्यजनेनयथानिलः ॥ ४४ ॥
आत्मासर्वत्रपूर्णोपिभासतेहृदयेमले ॥
यथादर्शेजलेस्वच्छेप्रतिविम्वः प्रकाशते ॥ ४५ ॥
आत्मनोनिर्गताबुद्धिर्विषयैः परिचाल्यते ॥
यथाभुवः पृथग्भूताधूलीवातैर्वशीकृता ॥ ४६ ॥
चिदानन्दरसश्लिष्टाबुद्धिस्तापैर्नहन्यते ॥
यथोदकरसक्लिन्नाधूलीवातैर्नधूयते ॥ ४७ ॥
चित्स्वरूपात्मनोबुद्धिर्निर्गताबहुरूपिणी ॥
सङ्गतातत्स्वरूपैवभुवोदृश्यमिदंयथा ॥ ४८ ॥
विचित्रेश्वरमायेयंशक्तिर्बुद्धिस्वरूपिणी ॥
उदेतिबहुधाप्येतियथाकाशेसमीरणः ॥ ४९ ॥
यायाशक्तिर्महाकाशेसासाचालयमठस्थिते ॥
यथातथेश्वरेजीवेसद्भिः सम्यग्विभाव्यते ॥ ५० ॥
यथास्त्रीतिनिर्भेदोरात्रौसर्वजनोदिवा ॥
विभर्त्तिवहुधाभेदंतथाप्रलयजन्मनोः ॥ ५१ ॥

बुद्धिरेकैवदुःखाय सुखायापिचदृश्यते ॥
परिपाक विभेदेन यथान्योऽद्विविधायते ॥५२॥
शत्रुमित्रमहन्मूर्ख भेदाबुद्धेर्नचात्मनः ॥
यथाबालकुमारादि भावादेहस्यनोधियः ॥५३॥
एकैवबुद्धिर्बहुधा गुणकर्म्मविभेदनः ॥
भातिच्छिद्रविभेदेन यथा शब्दःसहस्रधा ॥५४॥
एक धानेकधेवात्मा सर्वजन्तुषु राजते ॥
यथा क्षरार्थभेदेन पदेषुबहुधाध्वनिः ॥५५॥
माया मायेति जल्पन्तिनतां जानन्ति केचन ॥
अंतेस्वरूपस्मरणाद्यथादुःखंसुखंविना ॥५६॥
द्रष्टव्या रामलीलेयं नस्मर्त्तव्यासुखेप्सुभिः ॥
स्मर्त्तालिप्सुः सदादुःखीनद्रष्टादृश्यते यथा ॥५७॥
नदोषोवक्रजीवानां स्वजसादूपितात्मनाम् ॥
व्यञ्जनानां सुभव्यानामौत्कटचेलवणेयथा ॥५८॥
विनेश्वरंस्थितां बुद्धिंगत्वारागादयः खलाः ॥
क्षिप्रं यथापलायन्त जाराःदृष्ट्वाथतत्पतिम् ॥५९॥
श्रुत्वा सर्वाणिशास्त्राणि पीत्वातत्सारजरसम् ॥
ततोविसर्ज्जनीयानियथाम्रादि फलानिहि ॥६०॥

कृत्वावेदोक्त कर्म्माणिबुध्वातत्त्वंतदीशितुः ॥
स्वतन्त्रोविहरेतपित्रादत्तराज्योयथासुतः ॥६१॥
सदाभगवतोवाञ्छाभक्तानामृद्धिसिद्धये ॥
स्वतोपिचसुपुत्राणामधिकर्द्धयैपितुर्यथा ॥६२॥
नात्रशङ्काधिकर्त्तव्याभक्ते प्रीतिस्स्वतोधिका ॥
स्वांशेयदीश्वरस्यैवंभक्त पुत्रेपितुर्य्यथा ॥६३॥
निराकारोपि पूर्णोपि भक्तवाञ्छा प्रसिद्धये ॥
आविर्भवतिसाकारः परमात्मानलोयथा ॥६४॥
पुष्पंवृन्तंफलंपश्चान्माधुर्य्यं क्रमशोयथा ॥
तथासुकर्म्मसद्भक्तिर्ज्ञानमानन्दसम्भवम् ॥६५॥
क्षीरेग्नियोगेमाधुर्य्यं यथागाढविलोडनात् ॥
तथाहृद्यात्मबोधेपिध्यानादानन्दसम्भवः ॥६६॥
सर्वत्रगच्छतिनचापियथाघटस्थं-
सर्वत्रपूर्णममलंगगनं प्रशान्तम् ॥
तद्वद्विभावयमनस्य निशंशरीरे-
लोकेषुगच्छतिनगच्छति जीवतत्त्वम् ॥६७॥
यथाहिरत्नाकरतः सुरत्ना-
न्यादायहारं दधती हविज्ञाः ॥

कण्ठे तथास्मात्परि गृह्यबोध-
रत्नानिसन्तोमुदमाप्नुवन्तु ॥६८॥
नीत्वासद्बोधरत्नानि बुद्ध्वाध्यानं चिदात्मनः ॥
स्वतन्त्राः सज्जना लोके विहरन्तु महामुदः ॥६९॥
एतस्माद्भगवान्विष्णुरीश्वरःपरितुष्यतु ॥
विद्वज्जनोपकारायगणेशानन्दनिर्म्मितात् ॥७०॥

इति श्रीपरमहंस-पूज्यपाद १०८ श्री पं० गणे-
शानन्द मिश्र कृत दृष्टान्त
रत्नाकरः सम्पूर्णः ॥

श्रीगणेशायनमः ।

निवासोगगनग्रामे शुद्धबोधोस्तिनाममे ॥
सजातीय विजातीयस्वगतैरुज्झितोऽगुणः ॥१॥
यो बोधः सर्वलोकेषुव्याप्त एको निरञ्जनः ॥
सोस्मिमिथ्या भ्रमोन्य यन्नामरूपादकं जगत् ॥२॥
नमदर्थं शरीरं मे न च सर्व मिदं जगत् ॥
चिन्मयस्य विजातीयैः किमेभिः संभ्रमो भ्रमैः ॥३॥

ज्ञानमात्र स्वरूपस्य किं मेऽन्यस्मरणादिभिः ॥
सत्यस्यसुखरूपस्य मोहकैरनृतैर्भ्रमैः ॥ ४ ॥
अत्याश्चर्यमिदं नित्यं भासमानं निरन्तरम् ॥
शुद्धबोधमयं ब्रह्म यज्जनैर्नावगम्यते ॥ ५ ॥
भास्करादधिकं शान्तं बहिरन्तः प्रकाशकम् ॥
सर्वलोकगतं ज्ञानं ब्रह्मकिन्नावगच्छथ ॥६॥
विदांकुरुत विद्वांसः परमाणमयैर्भ्रमैः ॥
देहैः किमावृतंज्ञानं किं वा पूर्ण मनावृतम् ॥७॥
योग्यता परमाणूनां दृश्ये सर्वत्र दृश्यते ॥
तथाप्य हो विमूढानां भ्रमंबोद्धुंन धीःक्षमा ॥८॥
बुद्ध्वाबोधमयं ब्रह्मद्वैताध्यानसनिवृत्तये ॥
विस्मरेत्सर्वथा शब्दांस्त्रीनिदंयुष्मदस्मदः ॥९॥
य आनन्दः स्थितोबाल्ये सच्छन्नोलोक चिन्तया ॥
विवेकेन विरागेणच्छित्वातां तं समुद्धरेत् ॥१०॥
यथा यथास्वरूपस्य शुद्धबोधस्य संनिधिः ॥
तथा तथा मृषादृश्यं गगनस्येवनीलिमा ॥११॥
यथाहं भावनाबोधे दृश्येषु भ्रमभावना ॥
सिद्धास्त्राभाविकानित्या न ततोऽपिपरोऽपरः॥१२॥

ज्ञानं गुरुमुखाच्छास्त्रादिदंस्वानुभवान्मया ॥
निश्चितं नपरंतत्त्वं शुद्धबोधादपि क्वचित् ॥१३॥
नापरःपरस्मात्स्मात्पूर्यैवेदान्तोऽल्पो पदेशतः ॥
अस्माच्चस्मादयंनाम्ना राजतामात्मदर्पणः ॥१४॥

इति श्रीमद्राघवपुरवासि परमहंस गणेशानन्द-
विरचित आत्मदर्पणः समाप्तः शुभम् ।

अथ प्रश्नोत्तराष्टकम् ।

कालीला यस्य लीलेयं सकः कुत्र विराजते ॥
के वयं जन्मनाशाभ्यां सम्भ्रान्तास्तद्गुरोवद ॥१॥
कर्त्ताबोधमयः पूर्णोविश्वदेहोऽस्त्यनादिमान् ॥
मृषा लीला मृषा यूयं मृषा जन्म मृषा मृतिः ॥२॥
यदा गुरोमृषा सर्वं कर्त्ताबोधमयोयदि ॥
तदा कथन्नजानन्ति सर्वे सर्वमिदं जगत् ॥३॥
वेत्तिबुद्धिर्नवाबोधः समाष्टिव्यष्टिभेदतः ॥
सा द्विधातोनजानन्ति व्यष्टयोर्जीवसंज्ञिकाः ॥४॥
गुरोकश्चिदुपायोस्तिसम्भ्रमाणांनिवृत्तये ॥
मृषापि दुःखिनोव्यग्राभवेम सुखिनःकथम् ॥५॥

सदासमष्टयधीशस्यशुद्धबोधस्यसंस्मृतिः ॥
तथाऽनित्यविचारेणदृश्यमात्रस्याविस्मृतिः ॥६॥
सर्वदाविपर्यैर्दृश्यैर्द्वयं कल्याणिनो गुरो ॥
यथा जलेनवैमीनाः कथंतद्विस्मृतिःस्थिरा ॥७॥
सर्वथातत्परित्यागे दृष्टान्तोभवतांपरः ॥
परंचपङ्कजंतत्र यथायूयं तथास्तवै ॥ ८ ॥
प्रश्नोत्तराष्टकंह्येतद्भवामयनिवर्त्तकम् ॥
समस्तशास्त्रहृत्तत्त्वं द्वैताद्वैतसमर्थकम् ॥ ९ ॥

इति श्रीप्रश्नोत्तराष्टकं सम्पूर्णम् ।

जिज्ञासवोनलोकेद्य स्वल्पविज्ञानराइह ।
शिरःपीडाकरास्सर्वे मौनमत्र युगेवरम् ॥१॥
सुप्तोनजाग्रतंवक्ति नच तं सोऽपिवायथा ।
तथैव व्यवहारोऽयमनुरक्त विरक्तयोः ॥२॥
सत्येस्वरूपचैतन्ये विस्मृते क्लेशभागभूः ।
सदातदेव संस्मृत्य स्वरूपसुखभागभव ॥३॥
मिथ्या संसाररागेण चिन्मयोमृण्मयोऽभवः ।
सत्यस्वरूपरागेण मृण्मयश्चिन्मयोभव ॥४॥

यत्रयत्रमनोयाति तत्तत्पिण्ढधियास्त्रयम् ।
मृतेविभोजनेनस्मिन् शत्रुजिच्चिद्गृहेवस ॥५॥
विस्मृत्य नामरूपंस्वं तथा लोकस्यचिन्तनम् ।
तदाभवासियादृकृत्वं सोऽसितद्भवमर्वद ॥६॥
यावन्नदृश्यमात्रस्य स्वचपुःप्रमुखस्यतु ।
अभावनिश्चयश्चित्तेतावज्ज्ञत्वं सुदुर्लभम् ॥७॥
सप्तश्लोकीद्वितीयेयान्निर्गतामनसोबलात् ।
मौनभावेऽपिवक्तास्या नजानेकोऽस्तिनिश्चयम् ८।

इतिश्रीमत्परमहंस गणेशानन्द विरचिता
द्वितीय सप्तश्लोकी समाप्ता ।

यदादृश्यपदार्थानामन्तः सर्वत्रखंस्थितम् ।
तदाकिं खमृतेऽर्थत्वं पदार्थानाम्बदास्थितम् ॥१॥
यदा दृश्यमिदंसर्वं खमात्रंदृश्यतेसदा ।
तदा तत्रावधानेन चिदानन्दंविभावयेत् ॥२॥
दृढभावनयादृश्यं चिन्मयं प्रथमम्भवेत् ।
तदानन्दमयंसर्वं षण्मासैस्तुप्रजायते ॥३॥
अतोविवेकिनाधार्य्यं तत्वे चित्तन्निरन्तरम् ।
पशुवद्विषयेनैव यतोदृश्यमिदंमृषा ॥४॥

यथा ये ये घटा नष्टाः पुनस्तेतेक्कदाचन ।
भवन्तितद्वज्जीवानाम्मुक्तानाम्विद्धिनिर्णयम् ॥५॥
अलं शास्त्रसमूहानाम्विदुषाञ्चापिभाषणम् ।
दृश्ये गगनमायाते द्वैताद्वन्नामकथ्यते ॥६॥
मनसःशोधनार्थन्तु शास्त्रंसर्वम्महात्मभिः ।
कथितन्नतुसत्यार्थं द्वैतस्येतिविभावय ॥७॥

इतिश्रीमत्परमहंस गणेशानन्द विरचिता
सप्तश्लोकी समाप्ता ।

ज्ञानमात्रस्य पूर्णस्य नानाशक्त्याश्रयस्यमे ।
अहो अत्यद्भुतालीला जगद्रूपाविवर्त्तते ॥१॥
परमाणुमयेलोके सत्याभासेऽप्यहोस्पृहा ।
स्वप्रकाशखमध्यस्थ चिदानन्दस्यमेवृथा ॥२॥
तर्हिधिग्बुद्धिनैपुण्यं सत्याभासे भवेयदि ।
परमाणुमयेप्रीतिः कृत्वासत्यपराभवम् ॥३॥
स्वानन्दं विषयाकारं भान्तंमुञ्जक्तचपश्यति ।
अहोमृषं पृथक् परंमत्वामोदन्तिवैजनः ॥४॥
किं मृषादेहसंस्कारैः शास्त्राभ्यासैर्जपैश्चकिम् ।
चिन्मयं विष्णुमज्ञात्वा मृषावस्तुषुचंद्रतिः ॥५॥

विज्ञानपञ्चकस्यास्य भावार्थमननाज्जनः ।
लभते परमात्मानं निधानमिव सद्मनि ॥६॥

इतिश्रीमद्राघवपुरनिवासि परमहंस
गणेशानन्द विरचितं विज्ञान-
पञ्चकं समाप्तम् ।

शुद्धबोधोऽस्मिपूर्णोऽस्मिसदानन्दोऽस्मिनिर्मलः ।
निरपेक्षोऽस्मिदृश्येषुमदाभासेष्वसत्स्वहम् ॥१॥
यत्सत्यं त्रिषुकालेषु देशेषु सकलेषुच ।
सर्वावस्थास्वनुस्यूतं तदहंज्ञानमव्ययम् ॥२॥
यद्यद्विनाशि देहादिं यद्यदस्तिविनाशकृत् ।
नतैर्म्मेऽस्पसतःस्पर्शश्चिन्मयस्यनिराकृतेः ॥३॥
जानामिकर्म्मकर्त्तारम्भोक्तारमभिमानिनम् ।
भोग्यञ्चभङ्गुरंसाक्षीबोधोहमुभयोःपरः ॥४॥
बोधातिरिक्तं मिथ्यैव सर्वमाभासमात्रकम् :
विभाति विहतं तस्माद्बोध एवपरम्पदम् ॥५॥
जीवाश्चलौकिकी वाचोव्यवहाराः परेचये ।
मृषापरम्पराभ्यासाद्भ्रान्तिबोधबलेनते ॥६॥

यावन्न चाश्रयं बोधं बुद्ध्वालौकिकसम्भ्रमात ।
निर्वर्तेतानिवर्त्तेत नतावत्कोऽपिकेनाचित् ॥७॥

इतिश्रीमत्परमहंस गणेशानन्द विरचिता
यथार्थानुभूतिः समाप्ता ।

किमज्ञानं कुतोऽज्ञानं कस्याज्ञानं किमाश्रयम् ।
एवमज्ञानमज्ञानाद्भिन्नंविज्ञकुरुष्वमाम् ॥१॥
त्वमज्ञानं तवाज्ञानं त्वत्तोऽज्ञानंत्वदाश्रयम् ।
त्वम्मत्वाचित्स्वरूपेण स्वस्थोविज्ञोभवाऽधुना ॥२॥
स्वेनैवमनसाविद्धिकौमारेयौवनेऽद्यते ।
बुद्धेर्विपरिवर्त्तोवातववाऽस्तिचिदात्मनः ॥३॥
यस्त्वंषाण्मासिकोमन्दःसैवाऽन्योवाबुधोऽधुना ।
किं मृषामर्शनेव्यग्रः स्वान्तस्थशरणंव्रज ॥४॥
अचिन्तया स्वया शक्त्या विद्याऽविद्यास्वरूपया ।
भगवान् बहुरूपोऽयं क्रीडतीति विभावय ॥५॥

इतिश्रीमत्परमहंस गणेशानन्द विरचितो
विज्ञानदीपः समाप्तः ।

शुद्धाशुद्धपत्रम् ।

पृष्ठाङ्का	श्लोकाङ्काः	शुद्धम्	अशुद्धम्
२	३	बुद्धा	बुधा
६	१०	रूपा	रूपा
७	११	उद्गता	उद्गता
८	१४	गुणानां	गुणांनां
,,	,,	रूपै	रूपौ
,,	,,	बोधा	वाधा
१०	१८	भान्ति	भन्ति
१२	२२	तादृक्	तादृक
१२	२३	स्वर्णाभं	स्वणभं
१४	२७	सुतासिः	सुतासिः
१७	३१	रूपाकैर्वा	रुपाकैवौ
१८	३५	स्वर्तेन	स्वर्ते
१९	३८	गतौ	पातौ
,,	,,	बुद्धार्थं वि	बुद्धार्थंव
,,	,,	तत्त्वषो	तत्त्वेष
२०	३९	विधाः	विधः
,,	,,	प्रादु	प्रदु
२०	४०	शङ्करं	शंकरं
,,	,,	भिषेषु	निषेषु
,,	,,	पथम्	पपम्
२०	४१	विधेन्द्रियार्थेषु नथेदं	विधोन्द्रियेपषुतथेदः
२१	४३	यद्यह	पद्यह
,,	,,	हक्	हक
२२	४४	मापन्तु	मापंन्तुत
४२	८८	सर्वंभावे	सर्वमाये
,,	,,	वाभिः	वाभिः
४२	८९	द्रष्टा	हष्टा
४४	९३	स्नानं	स्नान
४४	९४	स्थिरम्	स्थरम्
४५	९५	पद्मा	पद्म
४६	९८	घणे	घणो

पृष्ठाङ्का	श्लोकाङ्काः	शुद्धम्	अशुद्धम्
४६	९८	दुःख	दुंख
४७	१०१	काङ्क्षी	कांक्षी
५२	११२	नाना	नना
५३	११५	गताक्लो	गताङ्क्लो
५४	११७	सर्वं	सर्व
५६	११९	नैव	नव
५७	२	ध्यातारं	ध्यातारं
५८	११	चेद्वः	चदः
५८	१४	यथा	यथा
५९	१७	नामजाति	नमाजाति
,,	,,	सुगन्धे	सुगन्ध
५९	२०	सुखे	सुखे
६०	२८	दाम्बरात्	दाम्बरात्
६०	२९	स्थैर्य	स्थैय
६०	३०	स्तिका	स्तिका
६०	३२	खायया	खाययया
६१	३५	वालुका	वलुका
६१	३७	विकोना	वहना
६१	३९	गम्यते	गम्येत
६१	४०	वुत्का	वुत्का
६२	५६	जल्पन्ति	जल्पन्ति
६३	६०	मारजं	मारजं
६४	६५	संभवः	संभवम्
६५	१	कर्षितभता	कर्षितफता
६६	७	परमाणु	परमाण
६७	१४	लात्ये	लात्पये
६७	४	जानन्ति	जनन्ति
७०	६	समुद्रा	समद्रा
,,	,,	द्वैताद्धि	द्वैताद्धि
७०	८	भुङ्क्ते	भुङ्क्त
७१	६	लभेत	लभती

५९ पत्रे १८ श्लोक एवं पठनीयः

न वास्तवं सुखंदुःखं विभात्यज्ञानसम्भवम् ॥
यथाहि पठनं दुःखं शैशवे यौवने सुखम् ॥ १ ॥

बालानन्दो धर्मदत्तो यस्य तातपितामहौ ॥
बुधावभूतामभवन्पुत्राद्या यस्य सूनवः ॥ १ ॥
अनन्तरामो रमादिलोचनो मुक्तिनाथकः ॥
लक्ष्मनिाथो भुक्तिनाथस्तेनेदमखिलं कृतम् ॥२॥

